॥ श्री ॥

सस्कृति रक्षक सघ साहित्य रत्नमाला का १८ वां रत्न

# संसार तरणिका



अखिल भारतीय साधुमार्गी
जैन संस्कृति रक्षक संघ
सैलाना (म. प्र.)

卐 दृढ़धर्मी प्रियधर्मी सुश्रावक श्रीमान् सेठ मिलापचन्दजी साहब बोहरा, मंड्या निवासी की धर्मप्राणा मातेश्वरी की ओर से सादर भेंट।



प्रथमावृत्ति ३००० | वीर संवत् २४९२
द्वितीय श्रावण पूर्णिमा | विक्रम संवत् २०२३

# प्राक् कथन

पर्वाधिराज के शुभ प्रसग पर 'ससार तरणिका' धम साधक आत्माओ की सेवा मे प्रस्तुत हो रही है। इसमे आत्मा को पवित्र एव शुद्ध बनानेवाली सामग्री सग्रहित हुई है। इसमे की–चउ-सरणपइण्णा, पापपडिग्घाय-गुण-बीजाहाणा-सुत्त, भवनाशिनी भावना, आलोचनाकुलक, सुविहित आलोचनादि सामग्री तो पहले भिन्न पुस्तको मे छप चुकी थी, उन्ही का सग्रह है। उनके अप्राप्य हो जाने और माँग होते रहने के कारण सग्रहित की गई है। पृ ८३ मे दी हुई विस्तृत आलोचना और 'समाधि-मरण भाषापाठ' (दिगम्बर विद्वान रचित) आदि कुछ सामग्री प्रियधर्मी उदारमना श्रीमान् सेठ किसनलालजी साहब मालू की सग्रह की हुई है। तथा मृत्यु महोत्सव के अन्तर्गत सस्कृत प्राकृतमय अतिम आराधना, प्रस्तुत विषय के अनुरूप एव अत्यत उपयोगी होने के कारण नई दी जा रही है। आशा है कि इसमे धमप्रिय साधक बन्धुओ और बहनो को विशेष लाभ होगा। इसका भाव पूर्वक पाठ करने से आत्म-पवित्रता बढेगी और बहुत निर्जरा होगी।

कोई यह नही समझे कि मृत्यु महोत्सव, अतिम साधना और समाधीमरणादि, केवल अतिम समय मे ही पढने की है। यह कभी भी पढी जा सकती है। भावोल्लास पूर्व जब भी पढा जाय, लाभ ही है। इनके अवलम्बन से सामायिकादि की साधना सरल एव सफल होती है।

सघ आशा करता है कि समाज इसमे यथेष्ट लाभ प्राप्त कर इसमे लगे हुए श्रम एव शक्ति को सार्थक करेगा।

# विषयानुक्रमणिका~

# संसार-तरणिका

## चउसरण-पइण्णा

षडावश्यक विचारणा

सावज्जजोगविरई उक्कित्तण, गुणवओ य पडिवत्ती।
खलिअस्स निंदणा, वणतिगिच्छ-गुणधारणा चेव ॥१॥

सावद्य योगों से निवृत्ति करना, सामायिक रूप प्रथम आवश्यक है। भगवान का गुणानुवाद करना दूसरा 'उत्कीर्तन' आवश्यक है। गुणवान गुरु महाराज का वन्दन करना, 'वन्दना' रूप तीसरा आवश्यक है। लगे हुए दोषों की शुद्धि करना, 'प्रतिक्रमण' रूप चतुर्थ आवश्यक है। विशेष शुद्धि के अतिचार रूप व्रण (घाव) की चिकित्सा करना, 'कायोत्सर्ग' नामक पंचम आवश्यक है। और नवीन गुणों को धारण करना, 'प्रत्याख्यान' रूप छठा आवश्यक है।

चारित्तस्स विसोही, कीरइ सामाइएण किल इह य।
सावज्जेतरजोगाण, वज्जणाऽऽसेवणत्तणओ ॥२॥

सामायिक व्रत की साधना से चारित्र की शुद्धि की जाती

है। सावद्य–पापयुक्त मन, वचन व काया के व्यापार का त्याग करना तथा निर्वद्य योगो की आसेवना करना ही सामायिक है।

**दसणायारविसोही चउवीसत्थएण किच्चइ य ।**
**अच्चब्भुअगुणकित्तणरूवेण जिणवरिंदाण ॥३॥**

भगवान् मे रहने वाले अत्यन्त अद्भूत गुणो की स्तुति करने रूप चतुर्विशतिस्तव से दर्शनाचार की विशुद्धि होती है। भगवान् के गुणो का प्रमुदित भाव से उत्कीत्तन करना 'चतुर्विशति-स्तव' कहलाता है, जो दूसरा आवश्यक है।

**नाणाईआ उ गुणा, तस्सपन्नपडिवत्तिकरणाओ ।**
**वदणएण विहिणा, कीरइ सोही उ तेसि तु ॥४॥**

ज्ञान, दशन, चारित्र आदि गुण हैं। ऐसे गुण सम्पन्न गुरु महाराज का वन्दन करना 'वन्दना' नामक तीसरा आवश्यक है। विधिपूर्वक वन्दन के द्वारा गुणवानो की भक्ति करने से ज्ञान आदि (ज्ञान, दशन, चारित्र) गुणो का लाभ होता है। वन्दन से उन गुणो की शुद्धि होती है।

**खलिअस्स य तेसि पुणो, विहिणा ज निंदणाई पडिक्कमण**
**तेण पडिक्कमणेण , तेसि पि अ कीरए सोही ॥५॥**

ज्ञान, दशन तथा चारित्र मे लगे हुए अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार आदि दोषो की पुन विधिपूर्वक आत्म साक्षि से शुद्धि करना 'प्रतिक्रमण' रूप चतुथ आवश्यक कहलाता है और इस प्रतिक्रमण के द्वारा उन दोषो की शुद्धि होती है।

**चरणाईयारा ण जहक्कम्म, वणतिगिच्छरूवेण ।**
**पडिक्कमणा सुद्धाण, सोही तह काउसग्गेण ।।६।।**

प्रतिक्रमण के द्वारा शुद्धि करने पर भी जो दोष रह गये हैं, व्रत के उन दोषो की व्रण चिकित्सा अर्थात् घाव पर मरहम पट्टी की तरह यह कायोत्सग नामक पचम आवश्यक है,जिसमे साधक, देहभान को भूलकर आत्मनिष्ठ हो जाता है ।

**गुणधारणरूवेण, पच्चक्खाणेण तवइआरस्स ।**
**विरिआयारस्स पुणो, सव्वेहि वि कीरए सोही ।।७।।**

गुण धारण रूप नमुक्कारसी पोरसी आदि पच्चक्खाणो से तप के अतिचारों की विशुद्धि होती है और सामायिक आदि सभी क्रियाओ से वीर्याचार के दोष की विशुद्धि की जाती है ।

चौदह स्वप्न

तीर्थङ्कर के गर्भ मे आने पर उनकी माता चौदह महास्वप्न देखकर जागृत होती है । वे चौदह महास्वप्न ये हैं,–

**गय वसह सीह अभिसेअ, दाम ससि दिणयर झय कुभ ।**
**पउमसर सागर, विमाण भवण रयणुच्चय सिंहि च ।८।**

१ हाथी २ वषभ (बैल) ३ सिंह ४ लक्ष्मी देवी का अभिषेक ५ पुष्पमाला ६ शशि(चन्द्रमा) ७ दिनकर (सूय) ८ ध्वजा ९ कुम्भ ( कलश ) १० पद्मसरोवर ११ सागर १२ विमान १३ रत्नराशि और १४ निर्धूम अग्नि शिखा ।

**अमरिंद नरिंद मुणिंदवंदिअ, वदिउ महावीर ।**

कुसलाणुबंधि बंधुरमज्झयण कित्तइस्सामि ॥६॥

जो देवेन्द्र नरेन्द्र तथा मुनीन्द्र से वन्दन प्राप्त हैं, उन भगवान् महावीर को नमस्कार करके कुशलानुबंधि–मोक्षदायी, मनोज्ञ अध्ययन का कथन करुगा।

चउसरणगमण-दुक्कडगरिहा, सुकडाणुमोअणा चेव।
एस गणो अणवरय, कायव्वो कुसलहेउत्ति ॥१०॥

इस गाथा के द्वारा ग्रथकार इस प्रकीर्णक मे ३ अधिकार बतलाते हैं–१ चारो शरण का ग्रहण, २ पापो की निन्दा और ३ सुकृत का अनुमोदन। ये तीनो मोक्ष के हेतु, नित्य करने योग्य हैं। प्रस्तुत अध्ययन मे इन्ही का विचार किया जायगा।

चार शरण

अरहंत-सिद्ध साहू, केवलिकहिओ सुहावहो धम्मो।
एए चउरो चउगइहरणा, सरण लहई धन्नो ॥११॥

अरिहन्त, सिद्ध, साधु तथा केवलज्ञानियो द्वारा कथित धर्म, जो प्राणियो के लिए सुखावह अर्थात् सुख देने वाला है। चतुर्गति के बन्धन को टालने वाले इन चार शरणो को भाग्यशाली प्राप्त करता है।

अरिहत भगवान् का शरण स्वीकार करने वाले भक्त का लक्षण आगे की गाथा मे बताया गया है।

अह सो जिणभत्ति, भरुच्छरत रोमच कुचुअ करालो।
पहरिसवण उम्मीस, सीसमि कयजली भणइ ॥१२॥

जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति से जिसके रोम-रोम पुलकित हो रहे हैं, ऐसा वह भक्त, प्रमोद भाव से युक्त होकर दोनो हाथों से सिर पर अजलि करके, अरिहन्त भगवान के शरण को स्वीकार करता है ।

श्री अरिहन्त भगवान का शरण

रागद्दोसारीण हंता, कम्मट्ठगाई अरिहंता ।
विसयकसायारीण, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥१३॥

जो अरिहन्त, राग द्वेष रूप शत्रु का हनन करने वाले हैं, ज्ञानावरण आदि कर्मों को नाश करने वाले है, विषय और कषाय रूप शत्रु का जड से उन्मूलन करने वाले हैं—ऐसे अरिहन्त भगवान् का मुझे शरण हो ।

रायसिरिमुवकमित्ता, तवचरणं दुच्चरं अणुचरित्ता ।
केवल-सिरिमरिहंता, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥१४॥

जिन्होने राज्य वैभव का त्याग करके कठिन तप और चारित्र का आचरण किया, घाती कर्मों का सर्वथा नाश करने से जो केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी के सर्वथा योग्य है, ऐसे अरिहन्त भगवान् का मैं शरण स्वीकार करता हूं ।

थुइवंदणमरिहंता, अमरिंदनरिंदपूअमरिहंता ।
सासयसुहमरहंता, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥१५॥

जो स्तुति और वन्दना के सर्वथा योग्य हैं, देवेन्द्र और नरेन्द्रो के सदा पूजनीय हैं और जो शाश्वत सुखो को प्राप्त करने योग्य हैं, ऐसे अरिहन्त भगवान् का मैं शरण स्वीकार करता हूं ।

परमणगय मुणता, जोइदमहिदझाणमरहता ।
धम्मकह अरहता, अरिहता हुतु मे सरण ॥१६॥

जो दूसरो के मनोगत भावो को जानने वाले हैं जिनका योगीन्द्र, सबेन्द्र महेन्द्र आदि ध्यान करते हैं, जो भव्य प्राणियों के लिए श्रुत और चारित्र धम का निस्पृह भाव से कथन करते हैं, ऐसे अरिहन्त भगवान् का मैं शरण स्वीकार करता हूँ ।

सव्वजिअाणमहिंस, अरहता सच्चवयणमरहता ।
बभव्वयमरहता, अरिहता हुतु मे सरण ॥१७॥

जो अरिहन्त, समस्त जीवो की अहिंसा-दया करने वाले, पूर्ण अहिंसा के पालक, सत्य वचन बोलने वाले, सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत के धारक हैं । ऐसे अरिहन्त भगवान् का शरण मैं स्वीकार करता हूँ ।

ओसरणमवसरित्ता, चउतीस अइसए निसेवित्ता ।
धम्मकह च कहता, अरिहता हुतु मे सरण ॥१८॥

जो देवों के द्वारा रचे गये समवसरण में बैठ कर और ३४ अतिशय से युक्त होकर भव्य प्राणियो को हितकर देशना देने वाले हैं, ऐसे अरिहन्त भगवान् का शरण मैं स्वीकार करता हूँ ।

एगाइ गिराऽणेगे, सदेहे देहिण सम छित्ता ।
तिहुयणमणुसासता, अरिहता हुतु मे सरण ॥१९॥

अपनी अद्भुत एक ही वाणी से प्राणियो के विविध सदेहों का छेदन करते हैं, तथा तीनो लोको का अनुशासन करने वाले

हैं, ऐसे अरिहन्त भगवान् का शरण मैं स्वीकार करता हूँ।

वयणामएण भुवण, निव्वाविता गुणेसु ठावता।
जिअलोअमुद्धरता, अरिहता हुतु मे सरण ॥२०॥

जो अरिहन्त, वचन रूप सुधा वृष्टि से ससार के सतप्त प्राणियो को शान्त करने वाले हैं, तथा कुमार्ग से हटा कर गुण-माग मे स्थिर करने वाले हैं और जो तीन लोक का उद्धार करने वाले हैं, ऐसे अरिहन्त का शरण मैं स्वीकार करता हूँ।

अच्चब्भूय गुणवते, निअजससससहरपसाहिअदिअते।
निअयमणाई अणते, पडिवन्नो सरणमरिहते ॥२१॥

जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दशन आदि अपूव गुणों को धारण करने वाले हैं, जिनके यश रूपी चन्द्रमा की निर्मल ज्योति से सभी दिशाएँ प्रकाशित हैं। अनादिकाल से नियत ऐसे अनन्त अरिहन्त भगवान् का शरण मैं स्वीकार करता हूँ।

उज्झिअजरमरणाण, समत्तदुक्खत्तसत्तसरणाण।
तिहुअणजणसुहयाण, अरिहताण नमो ताण ॥२२॥

जो जरा, जन्म, मरण से रहित हैं, दुख से सतप्त समस्त प्राणियो के लिए शरणभूत हैं और जो तीनों लोकों के प्राणियों को सुख-शान्ति देने वाले हैं एसे अरिहन्त भगवान को मेरा नमस्कार हो।

अरिहतसरणमलसुद्धिलद्ध, सुविसुद्धसिद्धबहुमाणो।
पणय-सिर-रइय-करकमल, सेहरो सहरिस भणई ॥२३॥

अरिहन्त भगवान् का शरण स्वीकार करने से जिनके आभ्यन्तर कषाय रूप मल की शुद्धि हो गई है, अतएव जिनको सिद्ध भगवान के प्रति आदर व बहुमान उत्पन्न हो गया, ऐसा वह साधक, सिर पर अजलि चढा कर सहर्ष यो बोलता है।

सिद्ध भगवान् का शरण

कम्मट्ठक्खयसिद्धा, साहाविअनाण-दसण समिद्धा ।
सव्वट्ठलद्धि सिद्धा, ते सिद्धा हुतु मे सरण ॥२४॥

ज्ञानावरण आदि आठो कर्मों का क्षय करके जो सिद्ध हो चुके हैं, ज्ञान दर्शन से जो समृद्ध हैं और सर्वार्थ लब्धि से जो सिद्ध हैं अर्थात् कृतकृत्य हैं, वे सिद्ध भगवान् मेरे शरण–रक्षक हो।

तिअलोअमत्थयत्था, परमपयत्था अचितसामत्था ।
मगल सिद्ध-पयत्था, सिद्धा सरण सुहपसत्था ॥२५॥

घाती तथा अघाती कर्मों का नाश होने से जो लोक के अग्रभाग पर विराजमान हैं, अत जो परमपद को प्राप्त हैं, जिनका सामर्थ्य अचिंत्य है, तथा मगलमय सिद्ध पद पर स्थित हैं, ऐसे सिद्ध भगवान का मैं शरण स्वीकार करता हूँ।

मूलुक्खयपडिवक्खा, अमूढलक्खा सजोगिपच्चक्खा ।
साहाविअत्तसुक्खा सिद्धा सरण परमसुक्खा ॥२६॥

जिन्होने राग और द्वेष की जड को मूल से उखेड दी है, जो अमूढ लक्ष वाले और सयोगी 'केवलज्ञानियो द्वारा प्रत्यक्ष हैं, जिनको आत्मिक सहज सुख प्राप्त है, ऐसे श्री सिद्ध भगवान्

का मैं शरण स्वीकार करता हूँ।

**पडिपिल्लिअपडिणीया, समग्गझाणग्गिदड्ढभवबीआ।**
**जोईसरसरणीया, सिद्धा सरण सुमरणीया ॥२७॥**

जिन्होने राग द्वेष रूपी शत्रु का विनाश कर दिया है और धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान रूप अग्नि से भवभ्रमण के बीज को जला दिया है, योगीश्वर भी जिनकी शरण मे जाते हैं, ऐसे सिद्ध भगवान् की मैं शरण स्वीकार करता हूँ।

**पावियपरमाणदा,गुणनीसदा विभिन्न भवकदा।**
**लहुईकयरविचदा, सिद्धा सरण खविअदंदा ॥२८॥**

जिन्होने परमानन्द प्राप्त कर लिया है, जो ज्ञानादि गुणों के भण्डार हैं, जिन्होने ससार रूपी कन्द का सर्वथा नाश कर दिया है, जिनके सामने चन्द्र और सूर्य का प्रकाश भी फीका लगता है और जिन्होने राग और द्वेष रूपी द्वन्द्व को सम्पूणतया मिटा दिया है, ऐसे सिद्ध भगवान् का मैं शरण स्वीकार करता हूँ।

**उवलद्धपरमबभा, दुल्लहलभा विमुक्कसरभा।**
**भुवणघरधरणखभा, सिद्धा सरण निरारभा ॥२९॥**

जिन्होने परम ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त कर लिया है, जिन्होने कठिनाई से प्राप्त होने योग्य मुक्ति को प्राप्त कर लिया है, जो आरम्भ से रहित हैं, लोक रूप घर को धारण करने के लिए जो स्तम्भ के समान हैं, ऐसे सिद्ध भगवान् की मैं शरण स्वीकार करता हूँ।

सिद्धसरणेण नवबम हेउसाहुगुणजणिअबहुमाणो ।
मेइणिमिलतसुपसत्थमत्थओ तत्थिम भणई ॥३०॥

सिद्ध भगवान का शरण स्वीकार करने से और ज्ञान तथा ब्रह्मचय के कारणभूत साधुगुण के प्रति जो बहुमान (अनुराग) धाला है, जिसका उत्तमाग(मस्तक)भूमितल पर लगा हुआ है, वह साधक आगे की गाथा द्वारा साधुजनो का शरण स्वीकार करता हुआ निम्न प्रकार कह रहा है--

साधु पद का शरण

जिअलोअबधुणो कुगइसिधुणो पारगा महाभागा ।
नाणाइएहिं सिवसुक्खसाहगा साहूणो सरण ॥३१॥

जो साधु, समस्त प्राणियो के लिए बन्धु रूप हैं, कुगति स्वरूप ससार समुद्र के पारगामी हैं, ज्ञान, दशन तथा चारित्र रूप मोक्ष मार्ग के साधक है, ऐसे महाभाग साधुओ का मैं भावपूवक शरण स्वीकार करता हूँ ।

केवलिणो परमोही, विउलमई सुयहरा जिणमयमि ।
आयरिय-उवज्झाया, ते सव्वे साहूणो सरण ॥३२॥

केवलज्ञानी, परमावधिज्ञानी, विपुलमति, विशिष्ट श्रुत को धारण करने वाले तथा जिनमत मे जो आचार्य उपाध्याय हैं, इन सब का मैं शरण स्वीकार करता हूँ ।

चउदस-दस-नवपुव्वी, दुवालसिक्कारसगिणो जे य ।
जिणकप्पाहालदिय, परिहारविसुद्धि साहू य ।३३।

चौदह पूर्व को धारण करने वाले, दस पूर्व को धारण करने वाले, नौ पूर्व को धारण करने वाले, द्वादशागी के जानने वाले और जो जिनकल्पी तथा यथालदिक और परिहार विशुद्ध चारित्र वाले साधु हैं, उन का मैं शरण स्वीकार करता हूँ ।

खीरासवमहुआसव, सभिन्नस्सोअकुट्ठबुद्धी य ।
चारणवेउव्विपयाणुसारिणः साहुणो सरण ।३४।

क्षीरासव–क्षीर के समान मधुर वचन बोलने वाले, महुग्रा-सव–मधु (शहद) के समान मधुर वचन बोलने वाले, सभिन्नश्रोत लब्धिवाले, कोष्ठ बुद्धि वाले, जघाचारण, विद्याचारण, वैक्रिय लब्धिवाले तथा पदानुसारी लब्धिवाले साधुओ का मैं शरण स्वीकार करता हूँ ।

उज्झियवइरविरोहा, निच्चमदोहा पसतमुहसोहा ।
अभिमयगुणसदोहा, हयमोहा साहुणो सरण ।३५।

जो वैर विरोध से रहित हैं, ईर्ष्याभाव से जो सर्वथा मुक्त हैं, कषाय रहित होने से जो सदा प्रशात मुखमुद्रा वाले हैं, क्षमा, शाति, सरलता आदि अनेक गुणो से सयुक्त हैं, जिन्होंने मोहनीय कर्म का सर्वथा विनाश कर दिया है, या विनाश करने मे तत्पर हैं, ऐसे साधुओ का मैं शरण स्वीकार करता हूँ ।

खडिअसिणेहदामा, अकामधामा निकामसुहकामा ।
सुपुरिसमणाभिरामा, आयारामा मुणी सरण ।३६।

जिन्होंने स्नेह की डोरी को काट दिया है, जो काम और वासना से रहित हैं, आध्यात्मिक सुख में तल्लीन हैं, श्रेष्ठ पुरुषों

के हृदय को आनन्दित करने वाले हैं और आत्म सुख मे रमण करने वाले हैं, ऐसे साधुओं का मैं शरण स्वीकार करता हूँ।

**मिल्हिअविसयकसाया, उज्झियघरघरणिसगसुहसाया।**
**अकलिअहरिसविसाया, साहू सरण गयपमाया।३७।**

जिन्होने पाच इन्द्रियो के विषय और कषाय को दूर हटा दिया है और जो घर, दार, मित्र तथा कुटुम्बियो के ससग तथा साता–सुख की लालसा से सदा दूर हैं, जिनके हृदय मे न हर्ष है और न शोक है, ऐसे अप्रमादी साधुओं का मैं शरण स्वीकार करता हूँ।

**हिंसाइदोससुन्ना, कयकारुन्ना सयभूरुप्पन्ना (प्पुण्णा)।**
**अजरामरपहखुन्ना, साहू सरण सुकयपुन्ना।३८।**

जो हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह आदि पापो से रहित है, षट्कायिक जीवो के प्रति करुणा बुद्धि वाले हैं, ब्रह्मा के समान बुद्धि वाले हैं, जो जरा और मरण रूप पथ से जो दूर हट गये हैं, ऐसे पुण्यशाली साधुओ का मैं शरण स्वीकार करता हूँ।

**कामविडवणचुक्का कलिमलमुक्का विमुक्कचोरिक्का।**
**पावरयसुरयरिक्का, साहू गुणरयणचच्चिक्का।३९।**

जो कामवासना की भयकर विडम्बना से रहित हैं, पाप रूपी कलिमल से जो सवथा रहित हैं, जो देव अदत्त, गुरु अदत्त, गाथापति अदत्त आदि चौय कम मल से रहित हैं, मैथुन रूपी रज से जो रहित हैं और जो साधुओ के उत्तम गुणो से सुशोभित हैं ऐसे साधुओ का मैं शरण स्वीकार करता हूँ।

साहुत्तसुट्ठिया ज, आयरिआई तओ य ते साहू ।
साहूभणिएण गहिया, तम्हा ते साहुणो सरण ॥४०॥

जो साधु धर्म की कठोर साधना के मार्ग मे स्थित हैं, जो आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक आदि विशेष पदो के धारक हैं, वे सब साधु इस पद से सगृहीत हो जाते हैं। उन सभी साधुओ का मैं शरण स्वीकार करता हूँ।

पडिवन्नसाहुसरणो, सरण काउ पुणोवि जिणधम्म ।
पहरिसरोमचपवचकचुअचिअतणू भवइ ॥४१॥

साधुओ का शरण स्वीकार करके फिर जिन धर्म का शरण स्वीकार करने के लिए वह साधक, हर्षित रोमराजी वाला होकर अर्थात् अत्यत हर्षित होता हुआ आगे की गाथाओ से इस प्रकार कह रहा है—

मगलमय धर्म का शरण

पवरसुकएहिं पत्त, पत्तेहिवि नवरि केहिवि न पत्त ।
त केवलिपन्नत्त, धम्म सरण पवन्नोऽह ॥४२॥

जो धर्म, प्रवर पुण्यशालियो के द्वारा प्राप्त है और कभी-कभी पुण्यशाली जीव भी भोगासक्त होने से जिस धर्म की साधना से वचित भी रह जाते हैं (जैसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती आदि), जो केवलज्ञानियो द्वारा सुप्रज्ञप्त एव सुकथित है, ऐसे धर्म का मैं शरण स्वीकार करता हूँ।

पत्तेण अपत्तेण य पत्ताणि य, जेण नरसुरसुहाइ ।
मुक्खसुह पुण पत्तेण, नवरि धम्मो स मे सरण ॥४३॥

मनुष्य सम्बन्धी सुख और देव सम्बन्धी सुख तो पात्र (भव्य) और अपात्र (अभव्य) जीवो के द्वारा भी प्राप्त किये गये हैं, किंतु मोक्ष सुख तो पात्र (भव्य) जीवो के द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं। इसलिए मैं धम का शरण स्वीकार करता हूँ।

**निद्दलिअकलुसकम्मो, कयसुहजम्मो खलीकयअहम्मो।**
**पमुहपरिणामरम्मो, सरण मे होउ जिणधम्मो ॥४४॥**

जो धम, कलुपित कम मल को नष्ट करने वाला है, जिस धर्म की साधना से मानव जीवन सफल बनता है, हिंसा आदि अधम प्रवृत्तियो को जिसने दूर हटा दिया है और जिस धर्म की साधना का परिणाम, साधको के लिए बड़ा ही सुन्दर एव सुखद हाता है, ऐसे जिनधम का शरण मैं स्वीकार करता हूँ।

**कालत्तएवि न मय, जम्मण जरमरणवाहिमय-समय।**
**अमय व बहुमय, जिणमय च सरण पवन्नोऽह ॥४५॥**

जो श्रुतधम, प्रवाह की अपेक्षा से तीनो काल मे नित्य एव शाश्वत है। जन्म, जरा, मरण तथा अनेक विध रोगो का नाश करने वाला है और जो जनता मे अमृत की तरह उपादेय है ऐसे इस द्वादशागी रूप श्रुतधम–जिनधर्म का शरण मैं स्वीकार करता हूँ।

**पसमिअकामपमोह, दिट्ठादिट्ठेसु न कलिअविरोह।**
**सिवसुहफलयममोह, धम्म सरण पवन्नोऽह ॥४६॥**

काम और विकार का शमन करने वाला, दृश्य और अदृश्य

पदाथ समूह मे अविरोधी और निश्चित रूप से मोक्ष सुख देने वाले ऐसे द्वादशांगी रूप श्रुतधर्म का शरण मैं स्वीकार करता हूँ ।

नरयगइगमणरोह, गुणसदोह पवाइनिक्खोह ।
निहणिअवम्महजोह, धम्म सरण पवन्नोऽह ॥४७॥

नरकादि गतियो का निरोध करने वाला, अहिंसा सत्य क्षमा आदि गुण समूह का स्थान, प्रवादियो से अक्षुब्ध (दृढ़ एव शात) रहने वाला, तथा जो कामरूप सुभट को नष्ट करने वाला है, ऐसे धम का शरण मैं स्वीकार करता हूँ ।

भासुरसुवन्नसुदर-रयणालकार-गारवमहग्घ ।
निहिमिव दोगच्चहर, धम्म जिणदेसिअ वदे ।४८।

स्वर्ण के समान प्रकाशमान देवगति का कारण, रत्नो के अलकारो से भी महामूल्यवान, चक्रवर्तियो की नवनिधियो की तरह निधान रूप, तथा नरकादि दुगतियो का नाश करने वाला, ऐसे जिनेन्द्र भगवान् द्वारा सुकथित धर्म की मैं वन्दना करता हूँ ।

दुष्कृत गर्हा

चउसरणगमणसचिअसुचरिअरोमचअचियसरीरो ।
कयदुक्कडगरिहा, असुहकम्मक्खयकखिरो भणई ।४६।

अरिहन्त, सिद्ध, साधु तथा केवली प्ररूपित धर्म, इन चार का शरण स्वीकार करने से अत्यन्त हर्षित बना हुआ वह साधक, अपने किये हुए दुष्कृत (पापो) की गर्हा करके, अशुभ कर्मों को क्षय करने की इच्छा रखने वाला, निम्नोक्त गाथाओ द्वारा अपनी आलोचना करता है—

मनुष्य सम्बन्धी सुख और देव सम्बन्धी सुख तो पात्र (भव्य) और अपात्र (अभव्य) जीवो के द्वारा भी प्राप्त किये गये हैं, किंतु मोक्ष सुख तो पात्र (भव्य) जीवो के द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं। इसलिए मैं धर्म का शरण स्वीकार करता हूँ।

**निद्दलिअकलुसकम्मो, कयसुहजम्मो खलीकयअहम्मो ।**
**पमुहपरिणामरम्मो, सरण मे होउ जिणधम्मो ॥४४॥**

जो धर्म, कलुषित कर्म मल को नष्ट करने वाला है, जिस धर्म की साधना से मानव जीवन सफल बनता है, हिंसा आदि अधम प्रवृत्तियो को जिसने दूर हटा दिया है और जिस धर्म की साधना का परिणाम, साधको के लिए बड़ा ही सुन्दर एव सुखद होता है, ऐसे जिनधर्म का शरण मैं स्वीकार करता हूँ।

**कालत्तएवि न मय, जम्मण जरमरणवाहिमय-समय ।**
**अमय व बहुमय, जिणमय च सरण पवन्नोऽह ॥४५॥**

जो श्रुतधर्म, प्रवाह की अपेक्षा से तीनो काल मे नित्य एव शाश्वत है। जन्म, जरा, मरण तथा अनेक विध रोगो का नाश करने वाला है और जो जनता मे अमृत की तरह उपादेय है ऐसे इस द्वादशागी रूप श्रुतधर्म–जिनधर्म का शरण मैं स्वीकार करता हूँ।

**पसमिअकामपमोह, दिट्ठादिट्ठेसु न कलिअविरोह ।**
**सिवसुहफलयममोह, धम्म सरण पवन्नोऽह ॥४६॥**

काम और विकार का शमन करने वाला, दृश्य और अदृश्य

पदार्थ समूह मे अविरोधी और निश्चित रूप से मोक्ष सुख देने वाले ऐसे द्वादशांगी रूप श्रुतधर्म का शरण मैं स्वीकार करता हूँ।

नरयगइगमणरोह, गुणसदोह पवाइनिक्खोह।
निहणिअवम्महजोह, धम्म सरण पवन्नोऽह ॥४७॥

नरकादि गतियो का निरोध करने वाला, अहिंसा सत्य क्षमा आदि गुण समूह का स्थान, प्रवादियो से अक्षुब्ध (दृढ एव शात) रहने वाला, तथा जो कामरूप सुभट को नष्ट करने वाला है, ऐसे धर्म का शरण मैं स्वीकार करता हूँ।

भासुरसुवन्नसुदर-रयणालकार-गारवमहग्घ।
निहिमिव दोगच्चहर, धम्म जिणदेसिअ वदे ।४८।

स्वण के समान प्रकाशमान् देवगति का कारण, रत्नो के अलकारो से भी महामूल्यवान, चक्रवत्तियो की नवनिधियो की तरह निधान रूप, तथा नरकादि दुर्गतियो का नाश करने वाला, ऐसे जिनेन्द्र भगवान् द्वारा सुकथित धर्म की मैं वन्दना करता हूँ।

दुष्कृत गर्हा

चउसरणगमणसचिअसुचरिअरोमचअचियसरीरो।
कयदुक्कडगरिहा, असुहकम्मक्खयकखिरो भणई ।४९।

अरिहन्त, सिद्ध, साधु तथा केवली प्ररूपित धर्म, इन चार का शरण स्वीकार करने से अत्यन्त हर्षित बना हुआ वह साधक, अपने किये हुए दुष्कृत (पापो) की गर्हा करके, अशुभ कर्मों को क्षय करने की इच्छा रखने वाला, निम्नोक्त गाथाओ द्वारा अपनी आलोचना करता है—

इहभविअमन्नभविअ, मिच्छत्तपवत्तण जमहिगरण ।
जिणपवयणपडिकुट्ठ, दुट्ठ गरिहामि त पाव ।५०।

इस भव और परभव मे मिथ्यात्व का प्रवर्त्तन रूप जा भयकर पाप किया है, तथा जिनन्द्र भगवान् के सिद्धात के विरुद्ध भाषण एव आचरण किया है, उस दुष्ट पाप को मिथ्या करने के लिए मैं आत्मसाक्षी तथा गुरुजनो की साक्षी से निन्दा करता हूं ।

मिच्छत्ततमधेण अरिहताइसु अवन्नवयण ज ।
अन्नाणेण विरइय, इण्हि गरिहामि त पाव ॥५१॥

मिथ्यात्व रूप अन्धकार से अन्धे बने हुए मैंने अरिहन्त आदि के सम्बन्ध मे अवणवाद बोलकर, या उसका सवथा अप-लाप कर के अज्ञानवश पाप कम का सचय किया है, उसके लिए मैं आत्म साक्षी से तथा गुरु साक्षी से निन्दा करता हूँ और भवि-ष्य मे ऐसा नही करूगा, इसके लिए विशेष सावधान रहूँगा ।

सुअधम्म सघसाहुसु, पाव पडिणीअयाइ ज रइअ ।
अन्नेसु अ पावेसु, इण्हि गरिहामि त पाव ॥५२॥

श्रुतधम और सघ धम के सम्बन्ध मे तथा साधु जीवन की साधना करने वाले साधुओ के सम्बन्ध मे, ईर्ष्या बुद्धि से जो उनके प्रति द्रोह बुद्धि जन्य पाप कम किया हो, तथा अन्य हिंसा, झूठ, चोरी आदि १८ पाप कम का सचय किया हो, तो उसके लिए मैं अब आत्म साक्षी से तथा गुरु साक्षी से निन्दा करता हूँ और मैं अपनी आत्मा को पवित्र बनाता हूँ ।

अरिहन्त भगवान् मे अरिहन्तपना, सिद्ध भगवान् मे सिद्धपना, आचार्यो मे आचार्यपना, उपाध्यायो मे उपाध्यायपना, साधुओ मे साधुपना, श्रावको मे श्रावकपना और सम्यग्दृष्टियो मे सम्यक्त्व, इन सब का मैं अनुमोदन करता हूँ।

अहवा सव्वं चिय, वीयरायवयणाणुसारि जं सुकयं।
कालत्तएवि तिविहं, अणुमोएमो तयं सव्वं ॥५८॥

अथवा श्री वीतराग भगवान् के वचनानुसार जितने भी सुकृत (धर्म) कार्य हैं, उन सब को मैं मन, वचन और काया से, तीन काल मे अनुमोदना करता हूँ।

सुहपरिणामो निच्चं, चउसरणगमाइ आयरं जीवो।
कुसलपयडीउ बंधइ, बद्धाउ सुहाणुबंधाउ ॥५९॥

चार शरण को नित्य स्वीकार करने वाला साधक, शुभ परिणाम वाला होता है, जिससे वह पुण्य की शुभ प्रकृतियो को बाधता है और पहले बधी हुई अशुभ प्रकृतियो को भी शुभ बना लेता है।

मंदणुभावा बद्धा, तिव्वणुभावाउ कुणइ ता चेव।
असुहाउ निरणुबंधाउ, कुणइ तिव्वाउ मंदाउ ॥६०॥

साधक अपने शुभ अध्यवसायो से पुण्य की मन्द रसवाली उन प्रकृतियो को तीव्र रसवाली बना लेता है और पहले बधी हुई तीव्र रसवाली अशुभ प्रकृतियो को मन्द रसवाली अथवा शुभ अध्यवसायो से निरनुबन्ध अर्थात् बिना बन्धवाली बना लेता है।

ता एय कायव्व, वुहेहि निच्चपि सकिलेसम्मि ।
होइ तिकाल सम्म, असकिलेसम्मि सुकयफल ।६१।

इसलिए बुद्धिमान साधक को रोगादि कारणो के उपस्थित होने पर सदा अशरण मे शरण देनेवाले अरिहत, सिद्ध, साधु, केवलि-प्ररूपित धर्म, इन चार शरणो को स्वीकार करना चाहिए । इससे त्रिकाल मे हित होता है और यह शरण बिना कष्ट के पुण्य सचय का कारण बनता है ।

चउरगो जिणधम्मो न कओ, चउरगसरणमवि न कय ।
चउरगभवुच्छेओ न कओ हा ! हारिओ जम्मो ।६२।

दान, शील, तप एव भाव रूप चार अग वाले जिनधर्म का मैंने आचरण नही किया और ससार से पार करने वाले इन चार शरणो को भी अगीकार नही किया । इस प्रकार मैंने चतुर्गति भवभ्रमण का उच्छेद भी नही किया । हा, मैंने मानव जैसे श्रेष्ठ जन्म को व्यर्थ गँवा दिया ।

इअ जीवपमायमहारिवीरभद्द तमेअमज्झयण ।
झाएसु तिसझमवझकारण निव्वुइसुहाण ।६३।

इसलिए मैं जीव के प्रमाद रूप शत्रु का नाश करने वाले और अन्त मे कल्याण करने वाले, इस चतु शरण अध्ययन का त्रिकाल-प्रात , मध्याह्न और साय, अध्ययन करता हूँ । क्योकि यह अध्ययन निश्चित रूप से मोक्ष सुखो को देने वाला है ।

॥ चउसरणपइण्णा सम्मत्ता ॥

# पावपडिग्घाय-गुणबीजाहाण सुत्तं

**णमो वीयरागाण सव्वण्णूण देविंदपूइयाण जहट्ठिय-वत्थुवाईण तेलुक्कगुरूण अरूहंताण भगवंताण ।**

जो राग द्वेष से सर्वथा रहित हैं, जगत् के समस्त पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से जानते हैं, देवेन्द्रो से जो पूजित हैं और जो वस्तु को यथार्थ प्ररूपणा करते हैं, तथा जिन्होने पुनर्जन्म की जड को काट कर भव सन्तति का समूल नाश कर दिया है, एसे त्रैलोक्य गुरु अर्हन्त भगवन्तो का मेरा नमस्कार हो।

**जे एवमाइक्खंति–इह खलु अणाइजीवे अणाइ-जीवस्सभवे, अणाइकम्मसंजोगनिव्वत्तिए, दुक्खरूवे, दुक्खफले, दुक्खाणुबंधे ।**

वे भगवन्त, इस प्रकार कहते है कि ससार मे जीव अनादिकाल मे है । अनादि जीव का ससार भी अनादि कर्म सयोगो से हुआ है । यह ससार जन्म, जरा, मरण, व्याधि आदि दुखो से भरा हुआ है । चारो गति मे जन्म मरणादि दु ख लगे होने से इसका फल भी दु ख रूप ही है । यह ससार दु ख के अनुबध वाला है । इसलिए अनेक भवो मे दु ख के साथ भुगत सके–ऐसी कर्म परम्परा का बन्धक है ।

**एयस्स ण वुच्छित्ती सुद्धधम्माओ, सुद्धधम्म सम्पत्ती पावकम्मविगमाओ, पावकम्मविगमो तहा भव्व-त्ताइभावओ ।**

इस भव परम्परा का विच्छेद, शुद्ध धर्म से होता है ।

शुद्ध धम की प्राप्ति, पाप कम के विनाश से होती है और पाप कम का विनाश तथा भव्यत्वादि कारणो से होता है।

तथा भव्यत्व उदय के साधन

**तस्स पुण विवागसाहणाणि चउसरणगमण दुक्कड-गरिहा सुकडाणासेवण। अओ कायव्वमिण हेउकामेण सया सुप्पणिहाण भुज्जो भुज्जो सकिलेसे तिकाल-मसकिलेसे।**

तथा भव्यत्वादि परिपक्व होने के साधन इस प्रकार हैं—१ अरिहन्तादि चार की शरण मे जाना, २ दुष्कृत्यो की निन्दा करना और ३ सुकृत्यो का सेवन करना। इसलिए मोक्षार्थी भव्य प्राणियो के लिए मन, वचन और शरीर के शुभ व्यापार से सदैव चार शरणादि करने योग्य हैं। ये चतु-शरणादि तीव्र रागादि सक्लेश मे बार-बार करने चाहिए और सक्लेश न हो, तो नित्य तीन काल मे करना चाहिए।

**जावज्जीव मे भगवतो परमतिलोगनाहा अणुत्तर-पुन्नसभारा खीणरागदोसमोहा अचिन्तचिंतामणी भव-जलहिपोया एगतसरणा अरहता सरण।**

ज्ञानादि समग्र ऐश्वर्यादि युक्त, तीन लोक के परम नाथ, सर्वोत्तम पुण्य के समूह वाले, जिनके रागद्वेष और मोह सवथा नष्ट हो गये है, ऐसे अचित्य चिन्तामणि रत्न समान, ससार रूपी समुद्र मे सुदढ जहाज के समान तथा एकात रूप से सर्वथा शरण करने योग्य, ऐसे अरिहन्त भगवन्तो का मुझे

शरणा हो ।

तहा पहीणजरमरणा अवेअकम्मकलका पणट्ठवा-वाहा केवलनाणदसणा सिद्धिपुरनिवासी निरुवमसुह-सगया सव्वहा कयकिच्चा सिद्धा सरण ।

जिनके जरा और मृत्यु का नाश हो चुका है, जो कर्म रूपी कलक से सर्वथा रहित हैं जिनकी सभी प्रकार की बाधाएँ नष्ट भ्रष्ट हो चुकी, ऐसे केवलज्ञान और केवलदर्शन वाले, सिद्धपुर निवासी, अनुपम उत्कृष्ट सुख के भोक्ता तथा सम्पूर्ण रूप से कृतकृत्य ऐसे सिद्ध भगवान् मेरे लिए सदा शरण रूप होवे ।

तहा पसतगभीरासया सावज्जजोगविरया पच-विहायारजाणगा परोवयारनिरया पउमाइनिदसणा झाणज्झयणसगया विसुज्झमाणभावा साहू सरण ।

उन सुसाधुओ का मुझे शरणा हो, जिनका हृदय क्षमादि उत्तम गुणो से शात एव गम्भीर है, जो सावद्य प्रवृत्तियो से विरत हैं, ज्ञानादि पाच प्रकार के आचार को जानते और पालते हैं, जो धर्मदान रूप परोपकार मे तत्पर हैं, तथा कमल की तरह विषयादि से निर्लिप्त है, जो स्वाध्याय और ध्यान मे मग्न रहा करते हैं और जिनके परिणाम विशुद्ध रहते है, ऐसे साधुओ का मुझे शरणा हो ।

तहा सुरासुरमणुअपूइओ मोहतिमिरसुमाली राग-द्दोसविसपरममतो, हेऊ सयलकल्लाणाण, कम्मवणविहा-

वसू, साहूणो सिद्ध भावस्स, केवलिपण्णत्तो धम्मो जावज्जीव मे भवउ सरण।

सकल सुरासुर एव नरेन्द्रो से पूजित, समस्त ऐश्वर्यादि से युक्त, मोह अन्धकार का नाश करने मे सूर्य के समान, राग द्वेष रूपी विष को दूर करने वाले महामन्त्र के समान, सभी प्रकार के कल्याण का कारण, कर्म रूप वन को भस्म करने मे अग्नि के समान और मोक्षरूप महासिद्ध के साधन वाले, ऐसे केवली भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म का मुझ जीवन पर्यंत शरण हो।

दुष्कृत्य निंदा

सरणमुवगओ अ एएसिं, गरहामि दुक्कड।

इन अरिहतादि चार के शरण को पाकर, मै अपने दुष्कृत्य की निन्दा करता हूँ।

ज ण अरहतेसु वा सिद्धेसु वा आयरिएसु वा उवज्झाएसु वा साहुसु वा साहुणीसु वा अन्नेसु वा धम्मट्ठाणेसु वा माणणिज्जेसु पूअणिज्जेसु तहा माईसु वा पिईसु वा बधूसु वा मित्तेसु वा उवयारिसु वा, ओहेण वा जीवेसु मग्गट्ठिएसु, अमग्गट्ठिएसु, मग्गसाहणेसु, अमग्गसाहणेसु, ज किंचि वितहमायरिअ अणायरिअव्व अणिच्छिअव्व पाव पावाणुबधि सुहुम वा बायर वा मणेण वा वायाए वा काएण वा, कय वा काराविअ वा अणुमोइअ वा, रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा, इत्थ वा जम्मे जम्मतरेसु वा गरहिअमेअ दुक्कडमेअ उज्झिअव्वमेअ विआणिअ मए

कल्लाणमित्तगुरुभगवतवयणाओ एवमेअ ति रोइअ सद्धाए, अरहतसिद्धसमक्ख गरहामि अहमिण दुक्कडमेय उज्झिअव्वमेय । इत्थमिच्छामि दुक्कड । मिच्छामि दुक्कड । मिच्छामि दुक्कड ।

अरिहत, सिद्ध, आचाय, उपाध्याय, साधु, साध्वी और धम के दूसरे गुणाधिक स्थान–श्रावक श्राविका, जो माननीय, आदरणीय एव पूजनीय हैं, तथा माता, पिता, बन्धु, मित्र, उपकारी अथवा सामान्यतया सम्यक्त्वादि धम माग मे रहे हुए जीव और माग मे नही रहे हुए (उन्मागगामी) जीव, माग के साधन आगम आदि शास्त्र और माग का नही साधने वाले ऐसे खड्गादि शस्त्र, इन सब के विषय मे मैंने शरीर से नही करने योग्य दुराचरण किया हो, मन से नही इच्छने योग्य की इच्छा की हो, इस प्रकार मने छोटे या बडे पापानुबन्धी पाप का आचारण, मन वचन और काया से स्वय किया हो, दूसरो से करवाया हो और दूसरे क पापो की अनुमादना की हो, राग द्वेप अथवा मोह स, इस जन्म अथवा पूव के भवान्तरो मे मने कुछ भी पाप किया हो, तो वह सभी पाप कार्य, निन्दा करने योग्य है, दुष्कृत्य है, और त्याग करने के योग्य है । यह मने कल्याण मित्र ऐसे भगवन्त गुरु महाराज के वचनो से जाना है । मुझे इसकी रुचि हुई है । म इसकी श्रद्धा करता हूँ और इसीलिए मैं अरहन्त और सिद्ध भगवान की साक्षी से सभी दुष्कृत्यो की निन्दा करता हूँ । मेरे सभी पाप मिथ्या हो जाओ । मेरे सभी पाप मिथ्या हो जाओ । मेरे सभी पाप मिथ्या हो जाओ ।

होउ मे एसा सम्म गरिहा । होउ मे अकरण-नियमो । वहुमय ममेअ ति, इच्छामि अणुसट्ठि अरहताण भगवताण गुरुण कल्लाणमित्ताण ति ।

उपरोक्त गर्हा मुझे भाव रूप होओ और पुन ऐसे पाप नही करने का मेरे नियम हो । ये दोनो बाते मुझे स्वीकार है । इसलिए मै अरिहत भगवन्त और कल्याण मित्र ऐसे गुरु महाराज की हित-शिक्षा चाहता हूँ ।

होउ मे एएहि सजोगो । होउ मे एसा सुपत्थणा । होउ मे इत्थ वहुमाणो । होउ मे इओ मुक्खबीय ति ।

इन अरिहतादि के साथ मेरा सयोग (उचित योग) प्राप्त होवो । मेरी अरिहतादि से की हुई यह प्राथना सफल हो । इस प्राथना मे मुझे बहुमान–हर्ष उत्पन्न हो और इस प्राथना से मुझे मोक्ष के बीज रूप शुभानुव धी–पुण्यानुबन्धी पुण्य की प्राप्ति हो ।

पत्तेसु एएसु अह सेवारिहे सिया । आणारिहे सिया । पडिवत्तिजुत्ते सिया । निरइआरपारगे सिया ।

इन अरिहतादि की प्राप्ति होने पर मैं उनकी सेवा के योग्य होऊँ । उनकी आज्ञा पालन करने के योग्य बनूं । उनकी भक्ति युक्त हो जाऊं और उनकी आज्ञा को निरतिचारपने पालन करने वाला बन सकूं। ऐसा शुभ अवसर मुझे प्राप्त हो।

सुकृत सेवना

सविग्गो जहासत्तीए सेवेमि सुकड अणुमोएमि

सव्वेसिं अरहंताणं अणुट्ठाणं। सव्वेसिं सिद्धाणं सिद्धभावं। सव्वेसिं आयरियाणं आयारं। सव्वेसिं उवज्झायाणं सुत्तप्पयाणं। सव्वेसिं साहूणं साहुकिरियं। सव्वेसिं सावगाणं मुक्खसाहणजोगे। सव्वेसिं देवाणं सव्वेसिं जीवाणं होउकामाणं कल्लाणासयाणं मग्गसाहणजोगे।

मैं मोक्ष का अभिलाषी हुआ हूँ, इसलिए मैं अपनी शक्ति के अनुसार (आत्म वीर्य को छिपाये बिना ही) सुकृत्य का सेवन इस प्रकार करता हूँ। मैं सभी तीर्थंकरो के धर्मोपदेशादि अनुष्ठान की अनुमोदना करता हूँ। इसी प्रकार सभी सिद्धो के अव्याबाधादि सिद्ध दशा की, सभी आचार्यों के ज्ञानाचारादि आचार की, सभी उपाध्यायो के सूत्रदान की, सभी साधुओ की स्वाध्याय ध्यानादि शुभ क्रियाओ की और सभी श्रावको के वैयावृत्यादि तथा सम्यक्त्व सहित देश विरति रूप मोक्ष साधना की मैं अनुमोदना करता हूँ और आसन्न भव्य तथा शुद्ध आशय वाले इन्द्रादि देवो की और सामान्यतया सभी जीवो के कुशल व्यापार (मार्गानुसारी आदि शुभ परिणति की) मैं अनुमोदना करता हूँ।

होउ मे एसा अणुमोअणा सम्मं विहिपुव्विआ, सम्मं सुद्धासया, सम्मं पडिवत्तिरूवा, सम्मं निरइयारा, परमगुणजुत्तअरहंताइसामत्थओ। अचिंतसत्तिजुत्ता हि ते भगवंतो वीयरागा सव्वण्णू, परमकल्लाणा परमकल्लाणहेऊ सत्ताणं। मूढे अम्हि पावे अणाइमोहवासिए, अणभिन्ने भावओ, हिआहिआणं अभिन्ने सिया, अहिअनि-

वित्ते सिया, हिअपवित्ते सिया, आराहगे सिया, उचि-अपडिवत्तीए सव्वसत्ताण सहिअ ति। इच्छामि सुक्कड। इच्छामि सुक्कड। इच्छामि सुक्कड।

अरिहन्तादि के अनुष्ठानो की मेरी यह अनुमोदना सूत्रोक्त विधि पूर्वक हो। यह कम को नष्ट करने से शुद्ध आशय वाली हो। सम्यक् क्रिया से आचरण करने योग्य बनो। इसका अति-चार रहित सम्यक् निर्वाह हो। क्योकि अरिहन्तादि भगवन्त वीतराग और सर्वज्ञ हैं और प्राणियो के लिए उत्कृष्ट कल्याण के करने वाले तथा कल्याण के हेतु है। और मैं तो मूढ पापी और अनादि मोह करके सहित हूँ। मैं परमार्थ (हिताहित) को भी नही जानता। इसलिए उन अरिहन्तादि के सामर्थ्य से मैं हिताहित का जाननेवाला बनू। हिताहित को जानकर अहित से निवृत्ति करके हित मे प्रवृत्ति करू। अपना हित जानकर सभी प्राणियो की उचित सेवा से मैं आराधक बनूँ। इसलिए मैं सुकृत्य की इच्छा करता हूँ। मैं सुकृत्य की इच्छा करता हूँ। मैं सुकृत्य की इच्छा करता हूँ।

सूत्र पाठ का फल

एवमेअ सम्म पढमाणस्स सुणमाणस्स अणुप्पेह-माणस्स सिढिलिभवति, परिहायति, खिज्जति, असुह-कम्माणुबधा। निरणुबधे चासुहकम्मे भग्गसामत्थे सुह-परिणामेण कडगबद्धे विअ विसे अप्पफले सिया, सुहा-वणिज्जे सिया, अपुणभावे सिया।

इस सूत्र का सवेग पूर्वक पाठ करने वाले के अथवा दूसरो से सुनने वाले तथा अर्थ की विचारणा करने वाले के अशुभ कर्म के अनुबंध (निरन्तर-श्रेणीबद्ध) मन्द विपाक से शिथिल हो जाते हैं। कर्म के पुद्‌गल कम हो जाते हैं और फिर विशेष प्रकार के अध्यवसाय से क्षय भी हो जाते है। इसके बाद यदि अनुबन्ध रहित अशुभ कर्म शेष रहे हो, तो वे इस सूत्र पाठ से उत्पन्न हुए शुभ परिणामो के प्रभाव से शक्ति रहित हो जाते हैं। जिस प्रकार मन्त्र के प्रभाव के कगन (सूत्र के धागे) द्वारा बाधा हुआ विष, अल्प फल वाला हो जाता है, उसी प्रकार वे कर्म भी सरलता से-सुखपूर्वक नष्ट करने योग्य हो जाते हैं और ऐसी परिणति बन जाती है कि जिससे फिर वैसे पाप कर्मों का बन्ध नहीं होता।

तहा आसगलिज्जति परिपोसिज्जति निम्मविज्जति सुहकम्माणुबधा। साणुबध च सुहकम्म पगिट्ठ पगिट्ठ-भावज्जिअ नियमफलय सुप्पउत्ते विअ महागए सुहफले सिया, सुहपवत्तगे सिया, परमसुहसाहगे सिया। अओ अपडिबधमेअ असुहभावनिरोहेण सुहभावबीय ति सुप्प-णिहाण सम्म पढिअव्व सोअव्व अणुपेहिअव्व ति।

इस सूत्र के पठन करने से शुभ कर्म के अनुबन्ध, चारों तरफ से एकत्रित होकर भावो की अभिवृद्धि से पुष्ट होते हुए पूर्ण होते हैं। इसके बाद अनुबध सहित शुभ भावो से उपार्जन किया हुआ और अवश्यमेव फल देने वाला ऐसा प्रधान शुभ कर्म,

उस प्रकार शुभ फल देने वाला होता है—जिस प्रकार अनुभूत और भली प्रकार से प्रयोग की हुई उत्तम औषधि फल देती है। शुभ अनुबंध वाला वह शुभ कर्म, शुभ कृत्यो की ओर ही प्रवृत्ति कराने वाला होकर परम्परा से मोक्ष के शाश्वत सुखो को साधने वाला होता है। इसलिए निदान रहित होकर और अशुभ भावो का निरन्धन करके इस सूत्र को शुभ भावो का बीज समझ कर, शुभ ध्यान और एकाग्र चित्त से पाठ करना, सुनना और चिन्तन करना चाहिए।

### अंतिम मंगल

**नमो नमिअनमिआण परमगुरुवीयरागाण। नमो सेसनमुक्कारारिहाण जयउ सव्वण्णुसासण। परमसंबोहीए सुहिणो भवतु जीवा, सुहिणो भवतु जीवा, सुहिणो भवतु जीवा।**

सभी लोक, देवो और ऋषियो को नमस्कार करते हैं। उन लोक पूज्य देवा और ऋषियो से नमस्कार किये हुए, ऐसे परम गुरु वीतराग भगवतो का नमस्कार होओ। तथा शेष नमस्कार के योग्य आचार्यादि गुणाधिको को नमस्कार होओ। सर्वज्ञ जिनेन्द्रो का शासन जयवन्त वर्तो। श्रेष्ठ बोधि—सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति से सभी जीव सुखी होओ। सभी जीव सुखी होओ। सभी जीव सुखी होओ।

॥ पावपडिग्घाय-गुणबीजाहाणसुत्त समत्त ॥

# भवनाशिनी भावना



त्यक्तसगो जीर्णवासा मलक्लिन्नकलेवर ।
भजन्माधुकरीं वृत्ति, मुनिचर्या कदा श्रये ।।१।।

वह शुभ दिन कब आयगा–जब मैं सभी सासारिक सबधो को त्याग दूगा । मेरे तन पर जीण शीण वस्त्र मात्र होगें । देह पर जमे हुए मल से मुझे घृणा नही होगी और माधुकरी वृत्ति को धारण कर मुनिचर्या का पालन करूँगा ?

त्यजन् दु शीलससर्गं, गुरुपादरज स्पृशन् ।
कदाऽह योगमभ्यस्यन्, प्रभवेय भवच्छिदे ।।२।।

दुराचारियो की सगति को छोड कर, गुरु महाराज के चरणो की रज को स्पश करते हुए और योगाभ्यास करते हुए, भव बधनो को नष्ट करने की शक्ति मुझ मे कब प्रगट हागी ?

महानिशाया प्रवृत्ते, कायोत्सर्गे पुराद्बहि ।
स्तम्भवत्स्कन्धकपण, वृषा कुर्यु कदा मयि ।।३।।

कब मैं निर्ग्रंथ बनकर, अ धेरी रात मे, नगर के बाहर कायुत्सर्ग में स्थिर, सूखे हुए ठूंठ अथवा स्तम्भ की तरह अडाल रहूँगा कि जिससे वृषभ (बैल) मुझे स्तम्भ मान कर, अपने कधे की खाज मिटाने के लिए मेरा घषण करेगें । ऐसी निर्भीकता और अडोलता मुझ मे कब प्रगट हागी ?

वने पद्मासनासीन, क्रोडस्थितमृगार्भकम् ।
कदाऽऽघ्रास्यन्ति वक्त्रे मा, जरन्तो मृगयूथपा ।४।

मैं वन मे पद्मासन लगा कर बैठूं । मेरे खोले मे मृग-

शावक खेल रहे हो, मेरे मुंह को मृगो के समूह का अधिपति सूंघ रहा हो और मैं अपने आत्मध्यान मे मग्न हो रहा हूँ, ऐसी शुभ घडी कब आयगी ?

शत्रौ मित्रे तृणेस्त्रैणे, स्वर्णेऽश्मनि मणौ मृदि ।
भवे मोक्षे भविष्यामि, निर्विशेषमति कदा ॥५॥

शत्रु और मित्र मे, तृण और स्त्रियो के समूह मे, स्वर्ण और पाषाण मे, मणि और मिट्टी मे तथा ससार और मोक्ष में मेरी समान वृत्ति–समभावना कब होगी ?

कश्चित्काल स भावी जिनवचनरतो, यत्र युक्तो यतीन्द्रै–र्ग्रामादौ मासकल्प स्वजनजनसमो, मुक्तलोभाभिमान । पुण्या पुण्याऽतिशायिप्रवगुणयुतैर्ज्ञानिभि सेविता ता । भिक्षा नि सगचेता प्रशमरसरतोऽह भ्रमिष्याम्यजस्रम् ॥६॥

ऐसा अपूर्व अवसर कब आवेगा, जब कि मैं श्री जिनेश्वर भगवान् के वचनो (आगम) मे प्रीति और स्वजनो तथा परजनों मे समभाव रखता हुआ विचरूँगा । लोभ, अभिमान तथा पौद्गलिक सग से रहित और प्रशम–शान्त रस मे लीन होकर ग्राम नगरादि मे मुनीन्द्रो के साथ मास कल्प युक्त रहूँगा और पुण्य के अतिशय वाले उत्तमोत्तम गुण सम्पन्न एसे ज्ञानी महात्माओ द्वारा सेवित, पवित्र भिक्षाचरी के लिए भ्रमण करता हुआ विचरूँगा ?

गुप्तो मानविवर्जितो व्रतरत, षट्कायरक्षोद्यत,
कृत्वा साधुविहारिता शमरसो, नि सगचित्त क्षमी।
स्थक्ताऽहकृतिनिश्चलेन मनसा, ध्यायन पद नैर्वृत।
स्थास्येऽह तु कदा शिलातलगतो, भव्या य मार्ग दिशन॥

मन वचन और काया से गुप्त, अभिमान रहित, पच महाव्रतो मे प्रीति, षट्काय रक्षा मे तत्पर और साधु के आचार के अनुसार विहार करता हुआ, मैं कब सम रस मे निमग्न बनूँगा? वह मगल वेला कब आवेगी—जब कि मैं पौदगलिक सग से सवथा विमुक्त क्षमावान् तथा अहकार रहित हो, शिलातल पर बैठ कर निश्चल मन से निवृति (मोक्ष) पद का ध्यान करता हुआ और भव्यजनो को मोक्ष माग का बोध देता हुआ जीवन यापन करूगा?

दग्ध्वा मोह समस्त, निरवधि विशद, ज्ञानमुत्पाद्य-लोके। तीर्थं निर्वाणमार्ग, शुभतरफलद भव्यसार्थाय कृत्वा॥ गत्वा लोकान्तदेश, कलिमल रहित, शर्वशर्मातिशायि। लप्स्येऽह मोक्षसौख्य, सहजनिजगुण कोऽपिकाल स भावी?॥८॥

वह धन्य दिन कब आयगा जब कि मैं मोह का पूर्ण रूप से नाश करके असीम अनन्त ज्ञान को प्राप्त कर लूगा और भव्य प्राणियो के हित के लिए अतिशय शुभ फलदायक, निर्वाण माग रूप तीथ का प्रवतन करके, कम रूप मल से
लोकात देश (सिद्ध शिला) पर पहुँचूगा और

सुखो से उत्कृष्ट ऐसे सहज निजात्म गुण रूप मोक्ष सुख को प्राप्त करुगा ?

अहा ! कैसी पवित्र, कितनी उच्च और परम पावनी भावना है यह । ऐसी भावना मे लीन होकर अभ्यास बढाते-बढाते ही अन्तपरिणति बढती है और श्रेणी पर आरूढ होकर घाती कर्मों को नष्ट किया जाता है । जो आत्मा, भावपूर्वक इन भावनाओ का चिन्तन करेंगे, उन्हे आत्मानन्द की प्राप्ति होगी ।



# आलोचना कुलक



जो कोवि मए जीवो, चउगइ-भव-चक्क-मज्झारम्मि ।
दूहविओ मोहेण, तमह खामेमि तिविहेण ॥१॥

चार गति रूप भव चक्र मे फँसकर, मोहवश मैंने किसी भी जीव को दु खित किया हो तो उन्हे मैं मन, वचन और काया से खमाता हूँ ।

नरएसु उववन्नो, सत्तसु पुढवीसु नारगो होऊ ।
जो कोवि तत्थ जीवो, दूहविओ त पि खामेमि ॥२॥

नर्क की सात भूमियो मे, नारक रूप मे उत्पन्न होकर, वहा किसी जीव को मैंने दु खित किया हो, तो उन्हे त्रियोग से खमाता हू ।

निद्दय-परमाहम्मिय-रूवेण, ज कयाइ दुक्खाइ ।
हा ! हा ! मह जीवेण, मूढेण त पि खामेमि ॥३॥

हाय ! परमाधार्मिक रूप मे मुझ मोही जीव ने, जिनको कितने ही दु ख दिये है, उनको भी मैं त्रियाग से खमाता हू ।

हा ! हा ! तइया मूढो, न याणिमो ज करस्स दुक्खाइ ।
करवत्तय छेयण भेयणाइ, केलीइ विहिम्राइ ॥४॥

ज किंचि मए तइया, कलकली भाव-मुवगएण कय ।
दुक्ख नेरइयाण, त पि अ तिविहेण खामेमि ॥५॥

हाय ! मैंने मोहान्ध होकर अपनी क्रीडा से, करवत आदि से उन नर्क के जीवो को छेदन भेदन किया और उन्हे होने वाले दु खो को नही देखा ।

मैंने तीव्र क्रोध भाव से युक्त होकर, नैरयिको को जो भी दु ख दिये, उनके लिये उन्हे त्रियोग से खमाता हू ।

तिरियाण चिय मज्झे, पुढवी-माईसु खार-भेएसु ।
अवरुप्प-रसत्थेण, विणासिम्रा ते वि खामेमि ॥६॥

तिर्यंच गति मे, क्षार आदि अनेक प्रकार की पथ्वी आदि मे उत्पन्न होकर, विकृत अहितकारी रस मे रहकर, जिन जीवो का विनाश किया, उनसे भी मैं क्षमा माँगता हू ।

बेइदिय तेइदिय-चउरिदिय माइ-णेग-जाइसु ।
जे भक्खिय दुक्खविया, ते वि य तिविहेण खामेमि ।७।

द्विइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय आदि अनेक जाति

उत्पन्न होकर, मैंने जिन जीवो को भक्षण करके दु ख पहुचाया हो, तो उन्हे भी मन, वचन और काया से खमाता हू ।

**जलयर-मज्झ-गएण, अणेग-मच्छाइ-रूव-धारेण ।**
**आहारट्ठा जीवा, विणासिया ते वि खामेमि ॥८॥**

मैंने जलचर जीवो मे मच्छ आदि रूप मे उत्पन्न होकर, आहार के लिये जीवो का विनाश किया । उन सभी जीवो से भी मै क्षमा याचना करता हू ।

**छिन्ना-भिन्नाय मए, बहुसो दट्ठूण बहु-विहा जीवा ।**
**जलयर-मज्झ-गएण, ते वि य तिविहेण खामेमि ॥९॥**

जलचर योनि मे जाकर, मैंने अनेक प्रकार के जीवो को देखकर, बहुत से जीवो को छिन्न भिन्न किए, उन सब को भी त्रियोग से खमाता हू ।

**सप्प-सरीसव-मज्झे, वन्नरो-मज्जार-सुणह-भेएसु ।**
**जे मे जीवे लविआ, दुक्खत्ता ते वि खामेमि ॥१०॥**

सप, सरिसृप आदि (उरग) जीवो मे, वानर आदि (भुजपुर) जीवो मे और बिल्ली-कुत्ता आदि (स्थलचर) अनेक प्रकार के जीवो में पैदा होकर मैंने जिन जीवो को मारा, या दु खी किया हो, उन्हे भी त्रियोग से खमाता हू ।

**सद्दूल सीह-गडय-जाईसु जीव-घाइ-जणिआसु ।**
**जे उववन्नेण मए, विणासिया ते वि खामेमि ।११।**

शार्दूल, सिह, गेंडा आदि जीवो की हिंसा करने वाली जीव

निद्दय-परमाहम्मिय-रूवेण, ज कयाइ दुक्खाइ ।
हा ! हा ! मह जीवेण, मूढेण त पि खामेमि ॥३॥

हाय ! परमाधार्मिक रूप मे मुझ मोही जीव ने, जिनको कितने ही दु ख दिये हैं, उनको भी मैं त्रियोग से खमाता हू ।

हा ! हा ! तइया मूढो, न याणिमो ज करस्स दुक्खाइ ।
करवत्तय छेयण-भेयणाइ, केलोइ विहिश्राइ ॥४॥

ज किंचि मए तइया, कलकली-भाव-मुवगएण कय ।
दुक्ख नेरइयाण, त पि अ तिविहेण खामेमि ॥५॥

हाय ! मैंने मोहान्ध होकर अपनी क्रीडा से, करवत आदि से उन नक के जीवो को छेदन भेदन किया और उन्हे होने वाले दु खो को नही देखा ।

मैंने तीव्र क्रोध भाव से युक्त होकर, नैरयिको को जो भी दु ख दिये, उनके लिये उन्हे त्रियोग से खमाता हू ।

तिरियाण चिय मज्झे, पुढवी-माईसु खार-भेएसु ।
श्रवरुप्प-रसत्थेण, विणासिश्रा ते वि खामेमि ॥६॥

तिर्यंच गति मे, क्षार आदि अनेक प्रकार की पृथ्वी आदि में उत्पन्न होकर, विभिन्न अहितकारी रस मे रहकर, जिन जीवो का विनाश किया, उनसे भी मैं क्षमा मांगता हू ।

बेइदिय तेइदिय-चउरिंदिय माइ-णेग-जाइसु ।
जे भक्खिय दुक्खविया, ते वि य तिविहेण खामेमि ।७।

द्विइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय आदि अनेक जाति मे

उत्पन्न होकर, मैंने जिन जीवो को भक्षण करके दु ख पहुचाया हो, तो उन्हे भी मन, वचन और काया से खमाता हू।

जलयर-मज्झ-गएण, अणेग-मच्छाइ-रूव-धारेण।
आहारट्ठा जीवा, विणासिया ते वि खामेमि ॥८॥

मैंने जलचर जीवो मे मच्छ आदि रूप मे उत्पन्न होकर, आहार के लिये जीवो का विनाश किया। उन सभी जीवो से भी मैं क्षमा याचना करता हू।

छिन्ना-भिन्नाय मए, वहुसो दट्ठूण बहु-विहा जीवा।
जलयर-मज्झ-गएण, ते वि य तिविहेण खामेमि ॥६॥

जलचर योनि मे जाकर, मैंने अनेक प्रकार के जीवो को देखकर, वहुत से जीवो को छिन भिन्न किए, उन सब को भी त्रियोग से खमाता हू।

सप्प-सरीसव-मज्झे, वन्नरो-मज्जार-सुणह-मेएसु।
जे मे जीवे लविप्रा, दुक्खत्ता ते वि खामेमि ॥१०॥

सप, सरिसृप आदि (उरग) जीवो मे, वानर आदि (भुजपुर) जीवो मे और बिल्ली कुत्ता आदि (स्थलचर) अनेक प्रकार के जीवो मे पैदा होकर मैंने जिन जीवो को मारा, या दु खी किया हो, उन्हे भी त्रियोग से खमाता हू।

सद्दूल-सीह-गडय-जाईसु जीव-घाइ-जणिआसु।
जे उववन्नेण मए, विणासिया ते वि खामेमि ॥११॥

शार्दूल, सिह, गेडा आदि जीवो की हिंसा करने वाली जीव

जाति मे उत्पन्न होकर, मैंने जिन जीवो का विनाश किया हो, उनको त्रियोग से खमाता हू ।

होलाह-गिद्धि-कुक्कड-हस वगाईसु सउणि-माईसु ।
ज खुह-वसेण खद्धा, किमि-माई ते वि खामेमि ॥१२॥

होला, गिद्ध, कुकडा, हस, बगुले आदि पक्षियो की जाति में उत्पन्न होकर, मने भूख के मारे जिन कीडे आदि जीवो को खाया हो, उनको भी मन, वचन और काया से खमाता हू ।

मणुएसु वि जे जोवा, जिब्भिदिय-मोहिण-मूढेण ।
पारद्धि-रमतेण, विणासिया ते वि खामेमि ॥१३॥

मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर, मैंने रसनेन्द्रिय के कारण मुग्ध और मूख बनकर तथा आखेट (क्रीडा) के द्वारा जिन जावो का विनाश किया हो, उनको भी खमाता हू ।

फास गिद्धेण ज चिय, पर दाराई गच्छ माणेण ।
जे दूमिअ दूहविआ, ते वि अ तिविहेण खामेमि ।१४।

मैंने स्पश-इन्द्रिय के विषय मे आसक्त होकर, परस्त्री-गमन आदि के द्वारा जिन जीवो को दमन पीडन से दु खित किया हो, उन्हे भी खमाता हू ।

चक्खुदिय-घाणिदिय सोइदिय वसगएण जे जीवा ।
दुक्खमि मए ठविआ, ते वि अ तिविहेण खामेमि ।१५।

मैंने चक्षु नाक और कान के वशीभूत होकर, जिन जीवों को दु ख मे डाला हो, उन्हे भी खमाता हू ।

सामित्त लहिऊण, जे बद्धा घाइया य मे जीवा ।
सवराह निरवराहा, ते वि अ तिविहेण खामेमि ।१६।

मैंने स्वामित्व या सत्ता पाकर जिन अपराधी निरपराधी जीवो को वन्दी बनाए और मारे हो, उन्हे भी खमाता हू ।

अवक्कमिऊण आणा, कारविआ जे उ माण-भगेण ।
तामस भाव-गएण, ते वि अ तिविहेण खामेमि ।१७।

मैंने अपनी आज्ञा का उल्लघन करने के कारण, मान-भग होने से क्रोधित होकर, जिन जीवो के साथ जबरन या बरजोरी की हो, उन्हे भी खमाता हू ।

अब्भक्खाण दिन्न, दुट्ठेण मएण कस्स वि नरस्स ।
कोहेण व लोहेण व, त पि अ तिविहेण खामेमि ।१८।

मैंने क्रोध लोभ, दुष्टता और अभिमान मे किसी मनुष्य पर झूठा आरोप लगाया हो, तो उन्हे भी खमाता हू ।

पर-आवयाइ हरिहो, पेसुन्न ज कय मए इण्हि ।
मच्छर-भाव-गएण, त पि अ तिविहेण खामेमि ।।१६।।

मैंने ईर्षावश चुगली करके जिनकी आजीविका छीनी हो, उन्हे भी खमाता हू ।

आरिय-खित्ते वि मए, खट्टिय-वागुरिय-डुम्ब-जाइय ।
जे वहिया मे जीवा, ते वि अ तिविहेण खामेमि ।२०।

मैंने आर्य क्षेत्र मे भी खटिक, वागरी और डुम आदि नीच जाति मे उत्पन्न होकर, जिन जीवो का वध किया हो, उन्हे भी

खमाता हू ।

मिच्छत्त-मोहिएण, जे जीवा के वि धम्मबुद्धिए ।
अहिगरण-कारणेण, वहाविया ते वि खामेमि ॥२१॥

मैंने मिथ्यात्व मोह के उदय से जिन जीवो को धर्म बुद्धि से क्लेश पहुचा कर मारे हो, उन्हे भी खमाता हू ।

दवदाण-पली-वणय, काऊण जे मए सिम्रा दड्ढा ।
सर दह तलाय-सोमे, जं वहिम्रा ते वि खामेमि ॥२२॥

मैंने पल्ली जगल आदि मे आग लगाकर, जिन जीवो को जलाया और सरोवर-कुण्ड आदि जलाशय के शोषण से जिन जीवो का वध किया हो, उन्हे भी खमाता हू ।

देवत्ते पि हु पत्ते, केलि-पऊगेण लोहबुद्धीए ।
जे दूहविया सत्ता, ते वि य तिविहेण खामेमि ॥२३॥

देवता म उत्पन्न होकर मैंने खेल खेल मे और लोभ बुद्धि से जिन प्राणियो का दु खित किया हो, उन्हे भी त्रियोग से खमाता हू ।

भवणवई-मज्झेसु, आसुर-भावेण वट्टमाणेण ।
निद्दय-हणमाणेण, दूहविया ते वि खामेमि ॥२४॥

भवनपति देव मे उत्पन्न होकर, आसुरी भावो में स्थित होकर, निदयता से हनन करके जिन जीवो को दु खी किया हो, उन्हे भी खमाता हू ।

वितरभावमि मए, केलीकिल भावओ य ज दुक्ख ।
जीवाण सजणिय, त पि य तिविहेण खामेमि ॥२५॥

मैंने व्यन्तर देव होकर, खेल (क्रीडा) के भाव से जिन जीवो को उद्वेग पहुचाया हो, उन्हे भी त्रियाग से खमाता हू ।

जोइसिएसु गएण, विसयाविस-मोहिएण-मूढेण ।
जो कोवि कओ दूहिओ, पाणी मे त पि खामेमि ।२६।

मैंने ज्योतिषी देव मे उत्पन्न होकर, विषयो मे निर्विषता (अमृत) की भ्रान्ति से मूढ बनकर, जिस किसी भी प्राणी को दुखित किया हो, उसे भी खमाता हू ।

पर-रिद्धि-मच्छरेण वि, लोहनिबुड्डेण मोहवसगएण ।
अभिओगेण व दुक्ख, जाण कय ताण खामेमि ।।२७।।

मैंने दूसरे की ऋद्धि समृद्धि से जलकर, लोभ मे डूबकर और लोभ का बदी बनकर, आवेश से जिनको दुख दिया हो, उन्हे भी मै खमाता हू ।

इय चउगइमावन्ना, जे केवि य पाणिणो मए दुहिया ।
दुक्खे वा सठविया, ते वि य तिविहेण खामेमि ।।२८।।

इस प्रकार मैंने चारो गति मे परिभ्रमण करते हुए, जिन किन्ही जीवो का दुखित किये हो दुख सागर मे डाले हों, उन सभी जीवो को मन, वचन और काया से खमाता हू ।

सव्व खमतु मज्झ, अहपि तेसि खमामि सव्वेसि ।
ज ज कयमवराहे वेर चइऊण मज्यत्थो ।।२६।।

सभी जीव मुझे क्षमा करें । मै भी उन सभी को क्षमा करता हू । जो भी आपसी अपराध और वैर विरोध है, उन्हे भूलकर माध्यस्थ भाव मे स्थिर होता हू ।

न य कोवि मज्झ वेरो, सयले वा इत्थ जीवलोगमि ।
दसण-नाण सहावो, इक्कोह् निम्ममो निच्चो ॥३०॥

इस सारे जीव लाक मे मेरा कोई भी वैरी नही है (क्योकि वैर मेरा स्वभाव नही है । ) मै ज्ञान दर्शन स्वभाव वाला अकेला हू । मेरा काई भी नही है । मैं नित्य हू ।

जिण सिद्धा सरण मे, साहूधम्मो य मगल परम ।
जिण नवकारो सरण, कम्मक्खय-कारण होउ ॥३१॥

अरिहत, सिद्ध, साधु और सवज्ञ कथित दया धर्म, सव श्रेष्ठ मगल हैं और ये मेरे लिये शरण्य हैं । राग-द्वेष से रहित आत्मा का नमस्कार करना (नमस्कार मन्त्र) भी शरण है, क्योकि वह कम क्षय का कारण होता है ।

आयरिय-उवज्झाये, सीसे साहम्मिए कुलगणे य ।
जे मे केइ कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥३२॥

आचाय, उपाध्याय, शिष्य, गुरुकुल और गण के प्रति मैंने जो भी कषाय किये हो, उन सब के लिये मै मन, वचन और काया से क्षमा याचना करता हू ।

सव्वे अवराह पहे, खामेमि अह खमेउ से भयव ।
अहमपि खामेमि सुद्धो, गुण-सघायस्स सघस्स ॥३३॥

हे भगवन् ! अपराध पथ मे पडा हुआ मैं क्षमा चाहता हू । अत मुझे क्षमा करें । मैं शुद्ध हृदय से गुणो के समूह सघ से क्षमा मागता हू ।

सव्व दुक्ख-पहीणाण, सिद्धाण अरहओ नमो ।
सद्दहे जिण-पण्णत्त, पच्चक्खामि य पावग ॥३४॥

सभी दु ख से रहित सिद्ध और अरिहत प्रभु को नमस्कार करता हू और वीतराग कथित तत्त्वो पर श्रद्धा करके पाप को छोडता हू ।

ज किंचि उच्चरिय, तमह निंदामि सव्व-भावेणं ।
सामाइय च तिविह, करेमि सव्व निरागार ॥३५॥

जो कुछ भी मुझसे बुरा आचरण हुआ हो, उसकी मैं सम्पूर्ण भाव से निन्दा करता हू और आगार से रहित सम्पूर्ण सामायिक को मन, वचन और काया से ग्रहण करता हू ।

बाहिरब्भितर उवहि, सरीराइ सभोयण ।
मणसा काय-वक्केण, सव्व तिविहेण वोसिरे ।३६।

धन-धान्य, स्त्री पुरुष आदि बाह्य उपधि, क्रोध, लोभ आदि आभ्यन्तर उपधि, भोजन सहित शरीर आदि (पर से ममत्व भाव) को मन, वचन और काया से और सम्पूण तीनो करणों से छोडता हू ।

इक्को उपज्जए जीवो, इक्को चेव विवज्जई ।
इक्कस्स होइ मरण, इक्को सिज्झइ नीरओ ।३७।

जीव अकेला ही उत्पन्न होता है, अकेला ही दुखी होता है, अकेले का ही मरण होता है और अकेला ही सिद्ध होकर कर्म रहित होता है ।

न य कोवि मज्झ वेरो, सयले वा इत्थ जीवलोगम्मि ।
दसण-नाण सहावो, इक्कोहं निम्ममो निच्चो ॥३०॥

इस सारे जीव लोक मे मेरा कोई भी वैरी नही है (क्योंकि वैर मेरा स्वभाव नही है।) मै ज्ञान दर्शन स्वभाव वाला अकेला हू। मेरा कोई भी नही है। मै नित्य हू।

जिण-सिद्धा सरण मे, साहूधम्मो य मगल परम ।
जिण नवकारो सरण, कम्मक्खय-कारण होउ ॥३१॥

अरिहत, सिद्ध, साधु और सर्वज्ञ कथित दया धर्म, सर्वश्रेष्ठ मगल हैं और ये मेरे लिये शरण्य है। राग-द्वेष से रहित आत्मा का नमस्कार करना (नमस्कार मन्त्र) भी शरण है, क्योंकि वह कर्म क्षय का कारण होता है।

आयरिय-उवज्झाये, सीसे साहम्मिए कुलगणे य ।
जे मे केइ कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥३२॥

आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, गुरुकुल और गण के प्रति मैंने जो भी कषाय किये हों, उन सब के लिये मै मन, वचन और काया से क्षमा याचना करता हू।

सव्वे अवराह पहे, खामेमि अहं खमेउ से भयव ।
अहमपि खामेमि सुद्धो, गुण सघायस्स सघस्स ॥३३॥

हे भगवन्! अपराध-पथ में पड़ा हुआ मैं क्षमा चाहता हू। अत मुझे क्षमा करें। मैं शुद्ध हृदय से गुणो के समूह सघ से क्षमा मागता हू।

सव्व दुक्ख-पहीणाणं, सिद्धाण अरहओ नमो ।
सद्दहे जिण-पण्णत्तं, पच्चक्खामि य पावगं ॥३४॥

सभी दुःख से रहित सिद्ध और अरिहंत प्रभु को नमस्कार करता हू और वीतराग कथित तत्त्वो पर श्रद्धा करके पाप को छोडता हू ।

जं किंचि उच्चरियं, तमहं निंदामि सव्व-भावेणं ।
सामाइयं च तिविहं, करेमि सव्वं निरागारं ॥३५॥

जो कुछ भी मुझसे बुरा आचरण हुआ हो, उसकी मैं सम्पूर्ण भाव से निन्दा करता हू और आगार से रहित सम्पूर्ण सामायिक को मन, वचन और काया से ग्रहण करता हू ।

बाहिरब्भिंतरं उवहिं, सरीराइ सभोयणं ।
मणसा काय-वक्केणं, सव्वं तिविहेण वोसिरे ।३६।

धन-धान्य, स्त्री पुरुष आदि बाह्य उपधि, क्रोध, लोभ आदि आभ्यन्तर उपधि, भोजन सहित शरीर आदि (पर से ममत्व भाव) को मन, वचन और काया से और सम्पूर्ण तीनो करणों से छोडता हू ।

इक्को उपज्जए जीवो, इक्को चेव विवज्जई ।
इक्कस्स होइ मरणं, इक्को सिज्झइ नीरओ ।३७।

जीव अकेला ही उत्पन्न होता है, अकेला ही दुखी होता है, अकेले का ही मरण होता है और अकेला ही सिद्ध होकर कर्म रहित होता है ।

इक्को करेइ कम्म, फलमवि तस्सिक्कओ समणुहवइ ।
इक्को जायइ मरइ, परलोय इक्कओ जाइ ॥३८॥

जीव अकेला कम करता है, उनका फल भी अकेला ही भोगता है, अकेला जन्मता-मरता है और अकेला ही परभव जता है।

इक्को मे सासओ अप्पा, नाण-दसण-लक्खणो ।
सेसा मे बहिरा भावा, सव्वे सजोग-लक्खणा ॥३९॥

ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला मेरा अकेला (भौतिक भावो से रहित) आत्मा शाश्वत है और शेष सयोग लक्षणवाले सभी भाव मुझसे बाह्य–भिन्न है।

सजोगा मूल जीवेण, पत्ता दुक्ख परपरा ।
तम्हा सजोग सबध, सव्व तिविहेण वोसिरे ॥४०॥

जीव सयोग के कारण दुःख-परम्परा को प्राप्त करता है। इसलिये सभी सयोग सम्बन्धो को, मन, वचन और काया से छोडता हूँ।

असजम-मन्नाण, मिच्छत्त सव्वओ वि य ममत्त ।
जीवेसु अजीवेसु य, त निंदे त च गरिहामि ॥४१॥

जीव और अजीव मे असयम, अज्ञान, मिथ्या श्रद्धा और सभी प्रकार के अपनेपन की निन्दा और गर्हा करता हू।

सव्व पाणारभ, पच्चक्खामि अलीय-वयण च ।
सव्व अदत्तादाण, अबभ-परिग्गह चेव ॥४२॥

सभी जीवो की हिंसा, सभी झूठ वचन, सभी तरह की चोरी, अब्रह्मचर्य और सभी प्रकार के परिग्रह का छोडता हू।

सव्व च असण पाण, चउव्विह जो य वाहिरो उवहि ।
अब्भितर च उवहिं, सव्व तिविहेण वोसिरे ॥४३॥

सभी अशन पान आदि चार प्रकार का आहार तथा बाह्य और आभ्यतर उपधि को नियोग से छोडता हू ।

समणोमित्ति य पढम, वीय सव्वत्थ-सजओमित्ति ।
सव्व च वोसिरामि य, जिणेहिं ज ज च पडिकुट्ठ ॥४४॥

पहले तो श्रमण–समताशील तपस्वी हू और दूसरे सर्वार्थ–सम्पूर्ण सयमी वन चुका हू। अत जिन जिन क्रियाओ का जिनेन्द्र ने निपेध किया है, उन सभी को छोडता हू।

मम मगलमरिहता, सिद्धा साहू सुय च धम्मो य ।
तेसिं सरणोवगओ, सावज्ज वोसिरामि त्ति ॥४५॥

अरिहत सिद्ध, साधु, श्रुत–शास्त्र और धर्म, मेरे लिये मगल-कारी हैं इनके शरण मे जाकर, मैं सभी सावद्य कर्मो को छोडता हूँ।

हतूण मोहजाल, छित्तूण य अट्ठकम्म-सकलिय ।
जम्मए मरण-ट्टट्ट, भित्तूण भवाउ मुच्चिहिसि ॥४६॥

मोह रूपी जाल का नाश करके, कर्म रूपी साकल को तोड-कर और जन्म-मरण रूपी हाट को छिन्न-भिन्न करके मैं भव (कारागार) से मुक्त जाऊँ।

अरहता मगल मज्झ, अरिहता मम देवया ।
अरिहते कित्तइत्ताण, वोसिरामि त्ति पावग ॥४७॥

अरिहत मेरे लिये मगलकारी हैं और अरिहत मेरे देवता हैं। इसलिये अरिहत का कीत्तन—गुणगान करके मैं समस्त पापों को छोडता हू।

सिद्धा य मगल मज्झ, सिद्धा य मम देवया।
सिद्धे य कित्तइत्ताण, वोसिरामि त्ति पावग ॥४८॥

सिद्ध प्रभु मेरे लिये मगलकारी है। सिद्ध प्रभु मेरे देवता हैं। इसलिये उनका गुणागान करके, मैं पापो को छोडता हू।

आयरिया मगल मज्झ, आयरिया मम देवया।
आयरिए कित्तइत्ताण, वोसिरामि त्ति पावग ॥४६॥

आचार्य मेरे लिये मगलकारी हैं। आचार्य मेरे देवता हैं। अत मैं आचार्य के गुणगान करके, पापो को छोडता हू।

उवज्झाया मगल मज्झ, उवज्झाया मम देवया।
उवज्झाए कित्तइत्ताण, वोसिरामि त्ति पावग ॥५०॥

उपाध्याय मेरे लिये मगलकारी हैं। उपाध्याय मेरे देवता हैं। इसलिये उपाध्याय के गुणगान करके, मैं पाप को छोडना हू।

सव्व साहु मगल मज्झ, सव्व साहु मम देवया।
सव्व साहु कित्तइत्ताण, वोसिरामि त्ति पावग ॥५१॥

सभी साधु मेरे लिये मगलकारी हैं, मेरे देवता हैं। सभी साधुओं के गुणगान करके मैं पापकर्म को छोडता हू।

खामेमि सव्वे जीवे, खमामि अह सव्वजीवाण।
सम्म ते सव्वभूएसु, वेर मज्झ न केणइ ॥५२॥

मैं सभी जीवो से क्षमा चाहता हू और सभी जीवो को क्षमा करता हू, तथा सभी पाणियो मे समभाव को धारण करता हू। किसी भी प्राणो के प्रति मेरा किंचित् भी वैर नही है।

**एय पच्चक्खाण, अणुपालेऊण सुविहीओ सम्म।**
**वेमाणिएसु देवो, हविज्ज अहवावि सिज्झिज्जा ॥५३॥**

सुविहित (सर्वज्ञोक्त धम मे स्थिर उत्तम मुनि) इस प्रत्याख्यान का अच्छी तरह से पालन करके वैमानिक देव होता है, अथवा सिद्ध हो जाता है।

॥ आलोचना कुलक समाप्त ॥

# सुविहित आलोचना

**जे मए अणतेण भव-भमणेण पुढवी-काइया आउ-काइया तेउ-काइया वाउ-काइया वणस्सइ-काइया एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया चउरिंदिया, पचिंदिया, देवा वा, मणुआ वा, नेरइया वा, तिरिक्ख-जोणिआ वा, जलयरा वा, थलयरा वा, खहयरा वा, सन्निआ वा, असन्निआ वा, सुहुमा वा, बायरा वा, पज्जत्ता वा, अपज्जत्ता वा, कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, पचिंदिअट्टेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, घाइआ वा, पीडिआ वा, मणेण वायाए काएण तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥१॥**

मैंन अनन्त भव भ्रमण करते हुए पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति रूप एकेंद्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीव, त्रिन्द्रिय जीव, चतुरिन्द्रिय जीव, पञ्चेन्द्रिय जीव–देव, मनुष्य, नर्क और तिर्यंच योनि के जीव–जलचर, थलचर, खेचर आदि मे, सज्ञी असज्ञी, सूक्ष्म-बादर और अपर्याप्त पर्याप्त जीवो को, क्रोध, मान, माया, लोभ, पाँचो इन्द्रियो की आतुरता, राग या द्वेष से, मारे या पीडित किये हो, तो मन, वचन, और काया से सभी दोष निष्फल हो।

ज मए अणतेण भव-भमणेण अलिअ भणिय कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, पंचिदि-अट्टेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मणेण वायाए काएण, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥२॥

मैंने अनन्त भव भ्रमण करते हुए क्रोधादि से झूठ बोला होऊँ, तो उसका फल निष्फल हो।

ज मए अणतेण भव भमणेण अदिन्न गहिअ कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, पंचिदि-अट्टेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मणेण वायाए काएण तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥३॥

मैंने भव परिभ्रमण मे क्रोधादि से अदत्त ग्रहण किया हो, तो वह पाप निष्फल होओ।

ज मए अणतेण भव भमणेण दिव्व माणुस्स तिरिच्छ मेहुण सेविअ कोहेण वा, माणेण वा, मायाए

वा, लोहेण वा, पंचिंदि-अट्टेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मणेण वायाए काएण तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥४॥

जो मैंने भव भ्रमण मे क्रोधादि से दिव्य, मानुषीय और तिर्यञ्च सम्बन्धी मैथुन सेवन किया हो, तो उसका बुरा फल निष्फल हो।

ज मए अणतेण भव-भमणेण अट्ठारस्स पाव-ठाणाइ कयाइ कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोभेण वा, पंचिदि-अट्टेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मणेण वायाए काएण तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥५॥

मैने भव-भ्रमण मे क्रोधादि से अठारह पाप स्थानो का सेवन किया हो, तो मेरे वे सभी पाप निष्फल होवे।

ज मे पुढवि-कायगयस्स सिला-लेहु-सक्करा-सण्हा वालुआ-गेरिअ-सुवन्नाइ महाधाउ-रूव सरीर पाणि-वहे पाणि सघट्टणे पाणि-पीडणे, पाव-वड्डणे, मिच्छत्त-पोसणे ठाणे सलग्ग त निंदामि गरहामि वोसिरामि ॥६॥

जो मैं पृथ्वीकाय मे शिला पत्थर आदि, गेरू सोना आदि महाधातु रूप शरीर धारण करके, प्राणि वध, सघष, पीडा पाप-व्यवहार, मिथ्यात्व पोषक स्थान आदि मे सलग्न हुआ होऊ, तो उसकी निन्दा गर्हा करता हू। उससे अलग होता हू।

ज मे आउ-कायगस्स जल-करग-महिआ-ओस्सा-हिमहरतणरूव सरीर पाणिवहे पाणि-सघट्टणे पाणि-

पीडणे पाव-वड्ढणे मिच्छत्त-पोसणे ठाणे सलग्ग- त निदामि गरहामि वोसिरामि ॥७॥

जो मैं जलकाय मे जाकर जल, करा, हिम आदि रूप में प्राणि-वध, प्राणि सघात, मिथ्यात्व पोपक आदि स्थान मे सलग्न, रहा होऊ, तो उस पाप की निन्दा गर्हा करता हू और उपवास से पृथक होता हू ।

ज मे तेउ-कायगयस्स अगणि इगाल-मुम्मुर-जाला-अलाय-विज्जु-उक्का-तेअ-रूव सरीर पाणि-वहे पाणि-सघट्टणे पाणि-पीडणे पाव-वड्ढणे मिच्छत्त-पोसणे ठाणे सलग्ग त निदामि गरहामि वोसिरामि ॥८॥

जो अग्निकाय मे अग्नि, अगार, विद्युत ज्वाला आदि तेज रूप मेरा शरीर मिथ्यात्व-पोपक, आदि स्थानो मे स्थित हुआ हो, तो उसकी निन्दा-गर्हा करता हूँ। उस पापसे अलग होता हू ।

ज मे वाउकायगयस्स वाउ-उझा-सास-रूव-सरीर पाणिवहे पाणि-सघट्टणे पाणि-पीडणे पाव-वड्ढणे मिच्छत्त-पोसणे ठाणे सलग्ग त निदामि गरहामि वोसिरामि ॥

जो वायुकाय मे शुद्ध अशुद्ध वायु, सास रूप मेरा शरीर मिथ्यात्व पोपक आदि स्थानो मे लगा हो, तो उसकी निन्दा-गर्हा करता हू ।

ज मे वणस्सइ-कायगयस्स मूल-कट्ठ-छल्लि-पत्त-पुप्फ-फल-वीय-रस-निज्झास-रूव सरीर पाणिवहे पाणि-सघट्टणे पाणि-पीडणे पाव-वड्ढणे मिच्छत्त-पोसणे ठाणे

सलग्ग त निंदामि गरहामि वोसिरामि ॥१०॥

जो वनस्पति काया मे मूल, काष्ठ, छाल, पत्ता आदि रूप मेरा शरीर पाप वधक, मिथ्यात्व पापक स्थान मे लगा हो, तो उसकी निन्दा-गर्हा करता हू। उससे अलग होता हू।

ज मे तसकायगयस्स रस-रत्त-मस-मेअ-अट्ठि-मज्जा-सुक्क-चम्म-रोम-नह नसा-रूव सरीर पाणि-वहे पाणि-सघट्टणे पाणि-पीडणे पाव-वड्ढणे मिच्छत्त-पोसणे ठाणे सलग्ग त निंदामि गरहामि वोसिरामि ॥११॥

त्रसकाय मे रस, रक्त, मास, चर्बी, हड्डी, मज्जा, शुक्र, चमडी, रोम, नख, नसा रूप मेरा शरीर प्राणि-वध, प्राणि-सघात, प्राणि-पीडा, पाप वृद्धि, और मिथ्यात्व रक्षा के स्थान मे लगा हो, तो उसकी निन्दा गर्हा करता हू। उस पाप से अलग होता हू।

ज मए इहभवे मणेण वायाए काएण दुट्ठु-कय त निंदामि गरहामि वोसिरामि ॥१२॥

जो मैने इस भव मे मन, वचन और काया से बुरा चिन्तन, बुरा भाषण और बुरा काय किया हो, तो उसकी निन्दा गर्हा करता हू। उस पाप से अलग होता हू।

आयरिय-उवज्झाए सीसे साहम्मिए कुल-गणे अ।
जे मे कया कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥१३॥

आचाय, उपाध्याय, शिष्य, स्वधर्मी, कुल और गण के प्रति

मैंने जो भी कषाय किये हों, उन सब के लिये क्षमा चाहता हूं।

सव्वस्स समण-संघस्स, भगवओ अंजलि करिय-सीसे।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥१४॥

संपूर्ण श्रमण संघ भगवान् को हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर और उनसे तथा सभी से क्षमा याचना करता हुआ मैं सब को क्षमा करता हूं।

सव्वस्स-जीव-रासिस्स,भावओ धम्म-निहिय-निय-चित्तो।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥१५॥

भाव से धर्म में हमेशा चित्त लगाकर और सभी जीवों को खमाकर, मैं भी सबको क्षमा करता हूं।

भयवं ! जं मए-चउ-गइ-गएण देवा तिरिआ मणुस्सा नेरइया, चउ-कसाओ-वगएण, पंचिंदिय-वसट्टेण इहम्मि भवे अन्नेसु वा भवग्गहणेसु वा मणेण वायाए काएण दूमिआ संताविआ अभिताविआ, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं। जेहिं अहं अभिदूमिओ संताविओ अभिहओ तमहं पि खमामि ॥१६॥

भगवन् ! मैंने देव, तिर्यञ्च, मनुष्य और नर्क गति में घूमते हुए परभव में, या इस भव में, चार कषाय और इन्द्रियवश आतुरता से जिस किसी का दमन, पीड़न आदि किया हो, तो वह क्रिया निष्फल हो और जिनसे मैं दमित, पीड़ित, दुःखित हुआ और मारा गया, उन्हें भी मैं क्षमा करता हूं।

जे मे जाणतु जिणा, अवराहा जेसु जेसु ठाणेसु।
तेऽह आलोएमि, उवट्ठिओमि सव्व-कालमि (वि)।१७।

श्री जिनदेव, मेरे अपराधो के जिन जिन स्थानो को देखते हैं, मैं उन सब की आलाचना करता हू और सभी काल मे, या सदा के लिये जागृत बनता हू।

छउमत्थो मूढमणो, कित्तियमि त पि सभरइ जीवो।
ज च न सुमरामि अह, मिच्छा मि दुक्कड तस्स।१८।

क्योकि मैं छद्मस्थ और मोहित मनवाला जीव हू। अत मेरे जो दूषण मुझ याद आए हैं, व कहे हैं, किंतु जो दूषण याद नही रहे, वे भी निष्फल हो जावे।

ज ज मणेण बद्ध, ज ज वायाइ भासिय किंचि।
ज ज काएण कय, मिच्छा मि दुक्कड तस्स ॥१९॥

मैंने जिन कर्मो को मन से बाधे हो, वाणी से बुरे कथन कहे हो और काया से बुरे कर्म किये हो, तो वे दुष्कृत मिथ्या हो।

सव्व पाणाइवाय पच्चक्खामि, सव्व मुसावाय पच्चक्खामि, सव्व अदिन्नादाण पच्चक्खामि, सव्व मेहुण पच्चक्खामि, सव्व परिग्गह पच्चक्खामि, सव्व राइ-भोयण प० सव्व कोह प०, सव्व माण प०, सव्व माय प०, सव्व लोह प०, सव्व पिज्ज प०, सव्व दोस, कलहं अब्भक्खाण, अरइ-रइ, पेसुन्न, परपरिवायं, मायामोस, मिच्छादसण-सल्ल इच्चेइयाइ अट्ठारस्स पावठाणाइ

दुविहेण तिविहेण वोसिरामि। अपच्छिममि उसासे तिविह तिविहेण वोसिरामि ॥२०॥

सपूर्ण हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, झूठा आरोप, हर्ष-विषाद, चुगली, निन्दा, विश्वासघात और मिथ्या-दर्शन रूपी काटे को दो करण तीन योग से और अन्तिम उच्छ्वास मे तीन करण, तीन योग से छोडता हू।



# बृहदालोयणा



## दोहा

सिद्ध श्री परमात्मा, अरिगजन अरिहत।
इष्टदेव वदू सदा, भयभजन भगवत ।१।
अरिहत सिद्ध समरूँ सदा, आचारज उवज्झाय।
साधु सकल के चरन को वदू शीश नमाय ।२।
शासन नायक सुमरिये भगवत वीर जिनद।
अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानद ।३।
अगुठे अमृत वसे, लब्धि तणा भडार।
श्रीगुरु गौतम सुमरिये, वाछित फल दातार ।४।
श्रीगुरुदेव प्रसाद से, होत मनोरथ सिद्ध।
ज्यू घन बरसत वेलि तरु, फूल फलन की वृद्ध ।५।

पच परमेष्ठी देव को, भजनपुर पत्रान ।
कर्म अरि भाजे सभी, होवे परम कल्याण ।६।
श्रीजिन युग पद कमल मे, मुझ मन भमर वसाय ।
कब ऊगे वो दिन करूँ, श्रीमुख दरिसन पाय ।७।
प्रणमी पद पकज भणी, अरिगजन अरिहत ।
कथन करूँ अब जीव को, किंचित मुझ विरतत ।८।
आरभ विषय कषाय वस, भमियो काल अनत ।
लख चोराशी योनि से अब तारो भगवत ।९।
देव गुरु धर्म सूत्र मे नव तत्त्वादिक जाय ।
अधिका ओछा जे कह्या, मिच्छा दुक्कृत मोय ।१०।
मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, भरियो रोग अथाग ।
वैद्यराज गुरु शरण से, ओषध ज्ञान वैराग ।११।
जे मैं जीव विराधिया, सेव्या पाप अठार ।
प्रभु तुम्हारी साख से, वारवार धिक्कार ।१२।
बुरा बुरा सब को कहू, बुरा न दीसे कोय ।
जो घट शोधू आपणा, तो मोसू बुरो न कोय ।१३।
कहेवा मे आवे नही, अवगुण भरया अनत ।
लिखवा मे क्यु कर लिखू जानो श्री भगवत ।१४।
करुणानिधि कृपा करो, कठिन कर्म मोय छेद ।
मोह अज्ञान मिथ्यात्व को करजो ग्रथीभेद ।१५।
पतित उद्धारन नाथजी, अपनो विरुद विचार ।
भूल चूक सब माहरी, खमिये वारवार ।१६।
माफ करो सब माहरा, आज तलक ना दोष ।

दीनदयाल देवो मुझे, श्रद्धा शील सतोप ।१७।
आतम निंदा शुद्ध भणी, गुणवत वदन भाव ।
रागद्वेप पतला करी, सबसे खमत खमाव ।१८।
छूटू पिछला पाप से, नवा न बांधू कोय ।
श्रीगुरुदेव प्रसाद से, सफल मनोरथ होय ।१६।
परिग्रह ममता तजी करी, पच महाव्रत धार ।
अत समय आलोयणा, करू सथारो सार ।२०।
तीन मनोरथ ए कह्या, जो ध्यावे नित्य मन्न ।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिव सुख धन्न ।२१।
अरिहन देव निर्ग्रंथ गुरु सवर निजरा धम ।
केवली भापित शास्त्र, यही जैन मत मम ।२२।
आरभ विपय कपाय तज शुद्ध समकित व्रत धार ।
जिन आज्ञा परमाण कर, निश्चय खेवो पार ।२३।
क्षण निकमो रहना नही, करनो आतम काम ।
भणना गुणनो शीखनो, रमनो ज्ञान आराम ।२४।
अरिहत सिद्ध सब साधुजी, जिन आज्ञा धर्म सार ।
मागलिक उत्तम सदा, निश्चय शरणा चार ।२५।
घडी घडी पल पल सदा, प्रभु सुमरण को चाव ।
नरभव सफला जो करे, दान शील तप भाव ।२६।

## २

सिद्धा जैसो जीव है, जीव सोही सिद्ध होय ।
कम मेल का आतरा, बूझे विरला कोय ।१।
कम पुद्गल रूप है, जीव रूप है ज्ञान ।

दो मिलकर वहु रूप है, विछड्यां पद निर्वाण ।२।
जीव करम भिन्न भिन्न करो, मनुष्य जन्म को पाय ।
ज्ञानातम वैराग्य से, धीरज ध्यान जगाय ।३।
द्रव्य थकी जीव एक है क्षेत्र असख्य प्रमाण ।
काल थकी सर्वदा रहे, भावे दशन ज्ञान ।४।
गर्भित पुद्गल पिंड मे, अलख अमूरति देव ।
फिरे सहज भव चक्र मे, यह अनादि की टेव ।५।
फूल अतर घी दूध मे, तिल मे तेल छिपाय ।
यू चेतन जड करम सग, वध्यो ममत दु ख पाय ।६।
जो जो पुद्गल की दशा, ते निज माने हस ।
याही भरम विभावते, बढे करम को वस ।७।
रतन वध्यो गठडी विषे, सूय छिप्यो घन माहि ।
सिह पिंजरा मे दियो, जोर चले कछु नाहि ।८।
ज्यु वदर मदिरा पियाँ, विच्छू डकित गात ।
भूत लग्यो कौतुक करे, त्यू कमा का उत्पात ।६।
कम सग जीव मूढ है, पावे नाना रूप ।
कर्मरूप मल के टले, चेतन सिद्ध स्वरूप ।१०।
शुद्ध चेतन उज्ज्वल दरब, रह्यो कम मल छाय ।
तप सयम सु धोवता, ज्ञान ज्योति वढ जाय ।११।
ज्ञान थकी जाने सकल, दशन श्रद्धा रूप ।
चारित्र से आवत रुके,तपस्या क्षपन स्वरूप ।१२।
कर्म रूप मल के शुधे, चेतन चादी रूप ।
निर्मल ज्योति प्रगट भया, केवल ज्ञान अनूप ।१३।

मूसी पावक साहगी, फूका तणा उपाय ।
रामचरण चारो मिल्या, मैल कनक को जाय ।१४।

कमरूप बादल मिटे, प्रगटे चेतन चद ।
ज्ञानरूप गुण चादनी, निमल ज्योति अमद ।१५।

राग द्वेष दो बीज से, कम बध की व्याध ।
ज्ञानातम वैराग्य स, पावे मुक्ति समाध ।१६।

अवसर बीत्या जात है, अपने बस कछु होत ।
पुण्य छता पुण्य हात है, दीपक दीपक ज्योत ।१७।

कल्पवक्ष चितामणि, इण भव मे सुखकार ।
ज्ञान वृद्धि इन से अधिक, भवदु ख भजनहार ।१८।

राइ मात्र घट वध नही, देख्या केवलज्ञान ।
यह निश्चय कर जानके, तजिये प्रथम ध्यान ।१९।

दूजा भी नहि चितिये, कम बध बहु दोप ।
त्रीजा चौथा ध्याय के, करिये मन सतोष ।२०।

गई वस्तु साचे नही, आगम वाछा नाहि ।
वतमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जग माही ।२१।

अहा समदृष्टि जीवडा, करे कुटुब प्रतिपाल ।
अतगत न्यारा रहे ज्यू धाय खिलावे बाल ।२२।

सुख दु ख दानु बसत है, ज्ञानी के घट माहि ।
गिरि सर दीसे मुकर में भार भीजवो नाहि ।२३।

जा जा पुद्गल फरसना, निश्चे फरस सोय ।
ममता समता भाव से, करम बध क्षय होय ।२४।

बाध्या सोही भोगवे, कर्म शुभाशुभ भाव ।
फल निर्जरा होत है, यह समाधि चित्त चाव ।२५।
बाध्या बिन भुगते नही, बिन भुगत्या न छुडाय ।
आप ही करता भोगता, आप ही दूर कराय ।२६।
पथ कुपथ घट वध करी, रोग हानि वृद्धि थाय ।
यूँ पुण्य पाप किरिया करी, सुख दुःख जग मे पाय ।२७।
सुख दिया सुख होत है, दुःख दिया दुःख होय ।
आप हणे नही अवर को, तो आपको हणे न कोय ।२८।
ज्ञान गरीबी गुरु वचन, नरम वचन निर्दोष ।
इन को कभी न छोडिये, श्रद्धा शील सतोष ।२९।
सत मत छोडो हो नरा, लक्ष्मी चौगुनी होय ।
सुख दुःख रेखा कर्म की, टाली टले न कोय ।३०।
गो धन गज धन रत्न-धन, कचन खान सुखान ।
जब आवे सतोष धन, सब धन धूल समान ।३१।
शील रतन महोटो रतन, सब रतना की खान ।
तीन लोक की सपदा, रही शील मे आन ।३२।
शीले सर्प न आभडे, शीले शीतल आग ।
शीले अरि करि केसरी, भय जावे सब भाग ।३३।
शील रतन के पारखु, मीठा बोल बैन ।
सब जग से ऊँचा रहे, जो नीचा राखे नैन ।३४।
तन कर मन कर वचन कर, देत न काहु दुःख ।
कर्म रोग पातक झडे, देखत वा का मुख ।३५।

पान खरतो इम कहे, सुन तरुवर बनराय ।
अब के बिछुडे कब मिलें, दूर पडेगे जाय ।३६।
तब तरुवर उत्तर दियो, सुनो पत्र एक बात ।
इस घर एही रीत है एक आवत एक जात ।३७।
वरस दिना की गाठ का, उत्सव गाय वजाय ।
मूरख नर समझे नही, वरस गाठ को जाय ।३८।
सोरठा—पवन तणो विश्वास, किण कारण तें दढ कियो ।
इनकी एही रीत, आवे के आवे नही ॥

## दोहा

करज बिराना काढ के, खरच किया बहु नाम ।
जब मुद्दत पूरी हुवे, देना पडस दाम ।१।
बिन दिया छूटे नही, यह निश्चय कर मान ।
हँस हँस के क्यु खरचिये, दाम बिराना जान ।२।
जीव हिंसा करता थका, लागे मिष्ट अज्ञान ।
ज्ञानी इम जाने सही, विष मिलिया पकवान ।३।
काम भाग प्यारा लगे, फल किम्पाक समान ।
मीठी खाज खुजावता, पीछे दु ख की खान ।४।
जप तप सजम दोहिलो, ओषध कडवी जान ।
सुख कारण पीछे घणो, निश्चय पद निर्वाण ।५।
डाभ अणी जल बिंदुवो, सुख विषयन को चाव ।
भवसागर दु ख जल भरयो, यह ससार स्वभाव ।६।
चढ उत्तग जहा से पतन, शिखर नही वा कूप ।
जिस सुख भीतर दु ख बसे, सो सुख भी दु ख रूप ।७।

जब लग जिसके पुण्य का, पहोचे नही करार ।
तब लग उसका माफ है, अवगुण करे हजार ।८।
पुण्य क्षीण जब होत है, उदय होत है पाप ।
दाजे वन की लाकडी, प्रजले आपोआप ।६।
पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग ।
दाबी दूबी ना रहे रुई लपेटी आग ।१०।
बहु बीती थोडी रही, अब तो सुरत सभार ।
परभव निश्चय जावनो, वृथा जन्म मत हार ।११।
चार कास ग्रामान्तरे, खरचो बाधे लार ।
परभव निश्चय जावणा, करिये धम विचार ।१२।
रज विरज ऊँची गई, नरमाइ के मान ।
पत्थर ठोकर खात है करडाइ के तान ।१३।
अवगुन उर धरिये नही, जो हो वृक्ष बबूल ।
गुण लीजे 'कालू' कहे, नही छाया मे शूल ।१४।
जैसी जापे वस्तु है, वैसी दे दिखलाय ।
वाका बुरा न मानिये, वो लेन कहा से जाय ।१५।
गुरु कारीगर सारीखा, टाँची वचन विचार ।
पत्थर से प्रतिमा करे, पूजा लहे अपार ।१६।
सतन की सेवा किया, प्रभु रीझत है आप ।
जाका बाल खिलाइये, ताका रीझत बाप ।१७।
भवसागर ससार मे, दीपा श्री जिनराज ।
उद्यम करी पहोचे तीरे, बैठी धर्म जहाज ।१८।
निज आतम को दमन कर, पर आतम को चीन ।

परमातम को भजन कर, सो ही मत परवीन ।१६।
समभु शके पाप से, श्रणसमभू हरषत ।
वे लूखा वे चीकणा, इण विध कम बधत ।२०।
समभ सार ससार मे, समभू टाले दोप ।
समभ समभ कर जीवडा, गया श्रनता मोक्ष ।२१।
उपशम विपय कपाय नो, सवर तीनो योग ।
किरिया जतन विवेक से, मिटे कर्म दुख रोग ।२२।
रोग मिटे समता वधे, समकित व्रत श्राराध ।
निर्वेरी सब जोव को, पावे मुक्ति समाध ।२३।

॥ इति भूल चूक मिच्छामि दुक्कड ॥

सिद्ध श्री परमात्मा श्ररिगजन श्ररिहत ।
इष्टदेव वदु सदा, भयभजन भगवत ।१।
श्रनत चौवीशी जिन नमु, सिद्ध श्रनता क्रोड ।
वर्त्तमान जिनवर सबे, केवली दो कोडी नव क्रोड ।२।
गणधरादिक सर्व साधुजी, समकित व्रत गुणधार ।
यथायोग्य वदन करूँ, जिन श्राज्ञा श्रनुसार ।३।

यहाँ एक बार नमस्कार मत्र का स्मरण करना चाहिए ।

पच परमेष्टी देवनो, भजन पुर पचान ।
कम श्ररि भाजै सभी, शिव सुख मगल थान ।४।
श्ररिहत सिद्ध सुमरु सदा, श्राचारज उवज्भाय ।
साधु सकल के चरन को, वदू शीश नमाय ।५।
शासन नायक सुमरिये, वर्धमान जिनचद ।
श्रलिय विघन दूरे हरे, श्रापे परमानद ।६।

अगुठे अमृत वसे, लब्धि तणा भडार ।६

जय गुरु गौतम सुमरिये, वाछित फल दातार ।७।

श्रीजिन युग पद-कमल मे, मुझ मन अलिय वसाय ।

कब उगे वो दिन करूँ, श्रीमुख दरिसन पाय ।८।

प्रणमी पदपकज भणी, अरिगजन अरिहत ।

कथन करूँ अब जीव को, किंचित मुझ विरतत ।९।

गाथा

हू अपराधी अनादि को, जनम जनम गुना किया भरपूर के ।
लूटिया प्राण छकाय ना, सेविया पाप अठारे करूर के ।
श्रीमुनिसुव्रत साहिबा ।

आज दिन तक इस भव मे, पहिले सख्यात, असख्यात और अनत भवो मे, कुगुरु कुदेव और कुधर्म की सद्दहणा प्ररूपना फरसना सेवनादिक सबधी पाप दोष लगा, उनका मिच्छामि दुक्कड । मैंने अज्ञानपन से, मिथ्यात्वपन से, अव्रतपन से, कषाय-पन से, अशुभयोग से, प्रमाद करके, अपछदा अविनीतपना किया, श्री अरिहत भगवत वीतरागदेव, केवलज्ञानी गणधरदेव, आचार्यजी महाराज, धर्माचायजी महाराज उपाध्यायजी महा-राज, साधुजी महाराज, आर्याजी महाराज तथा सम्यगदृष्टि स्वधर्मी श्रावक और श्राविका, इन उत्तम पुरुषो की तथा शास्त्र सूत्रपाठ अथ परमार्थ और धर्म सबधी समस्त पदार्थो की अविनय अभक्ति आशातना आदि की, कराई, अनुमोदी मन वचन काया से, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से, सम्यक् प्रकार विनय भक्ति आराधना, पालना, फरसना, सेवनादिक यथायोग्य अनुक्रम से नहीं

की, नही कराई, नही अनुमोदी, तो मुझे धिक्कार धिक्कार वारवार मिच्छामि दुक्कड। मेरी भूल चूक अवगुण अपराध सब मुझे माफ करो। मैं मन वचन काया करके क्षमाता हूँ।

दोहा

मैं अपराधी गुरदेव को, तीन भवन को चोर।
ठगू विराना माल मैं, हा हा कर्म कठोर।१।
कामी कपटी लालची अपछदा अविनीत।
अविवेकी क्रोधी कठिन, महापापी * रणजीत।२।
जे मैं जीव विराधिया, सेव्या पाप अठार।
नाथ तुम्हारी साख से, बारबार धिक्कार।३।

मैंने छकायपन से छकाय की विराधना की, पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय, सन्नी, असन्नी, गर्भज, चौदह प्रकार के समुच्छिम आदि त्रस थावर जीवों की विराधना, मन वचन काया से का कराई, अनुमोदी। उठते, बैठते, सोते, हालते, चालते, शस्त्र, वस्त्र, मकानादिक उपकरण उठाने धरते, लेते, देते, वतते वर्तावत, अप्पडिलेहणा दुप्पडिलेहणा सबधी, अप्रमाजना, दु-प्रमाजना सबधी न्यूनाधिक विपरीत पडिलेहणा सबधी और आहार विहार आदि अनेक प्रकार के कर्त्तव्यो मे सख्यात, असख्यात और निगाद आश्रयी अनत जीवो के जितने प्राण लूटे, उन सब जीवा का मैं पापी अपराधी हूँ। निश्चय करके बदले का देनदार हूँ। सब जीव मेरे प्रति माफ करो, मेरी भूल चूक

* पढ़ने बांचने वाले यहाँ अपना नाम बोलें।

अवगुण अपराध सब माफ करो ।

देवसी, राई, पक्खी, चौमामी और सम्वत्सरी सबधी वार-वार मिच्छामि दुक्कड । वारवार मैं क्षमाता हूं। तुम सब क्षमा करो ।

खामेमी सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे।
मित्ति मे सव्वभूएसु वेर मज्झ ण केणइ ।१।

वह दिन धन्य होगा जिस दिन मैं छ काय का वैर बदला से निवृत्त होउगा । समस्त चोरासी लाख जीवायोनि को अभय-दान देउगा । वह दिन मेरा परम कल्याण का होगा ।

सुख दियां सुख होत है, दु ख दियां दु ख होय ।
आप हणे नही अवर को, आपका हण न कोय ।१।

दूजा पाप मृषावाद–झूठ वोलना । क्रोध के वश, मान के वश, माया के वश, लोभ के वश, हास्य करके, भय के वश, मृषा (झूठ) वचन वोला, निंदा, विकथा की, कर्कश कठोर मरम वचन वोला, इत्यादि अनेक प्रकार से मृषावाद (झूठ) वोला वोलवाया और अनुमोदा, उनका मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कड ।

थापनमोसा मैं किया करी विश्वास घात ।
परनारी धन चोरिया, प्रकट कह्यो नही जात ।१।

मुझे धिक्कार धिक्कार वारवार मिच्छामि दुक्कड । वह दिन धन्य होवेगा, जिस दिन सव प्रकार से मृषावाद का त्याग करूगा । वह दिन मेरा कल्याणरूप होवेगा ।२।

तीसरा पाप अदत्तादान–विना दी हुई वस्तु चोरी करके लेना । यह वडी चोरी लौकिक विरुद्ध । अल्प चोरी मकान सबधी

अनेक प्रकार के कत्तव्यो मे उपयोग सहित या बिना उपयोग से । अदत्तादान, मन वचन काया से चोरी की, कराई और अनुमोदी तथा धम सबधी, ज्ञान दशन चारित्र और तप श्री भगवत गुरुदेव की बिना आज्ञा किया, उसका मुझे धिक्कार धिक्कार वारवार मिच्छामि दुक्कड । वह दिन मेरा धन्य होगा, जिस दिन सब प्रकार से अदत्तादान का त्याग करूँगा । वह दिन मेरा परम कल्याण का हावेगा ।३।

चौथा मैथुन सेवन करने के लिये मन वचन और काया के योग प्रवर्त्ताया । नववाड सहित ब्रह्मचर्य नही पाला । नववाड मे अशुद्धपन से प्रवृत्ति हुई । मैंने मैथुन सवन किया,दूमरो से सेवन करवाया और सेवन करने वाले का अच्छा समझा, उसका मन वचन काया स मुझे धिक्कार धिक्कार वारवार मिच्छामि दुक्कड । वह दिन मेरा धन्य होगा, जिस दिन मैं नववाड सहित ब्रह्मचय शीलरत्न आराधूगा, याने सवथा सब प्रकार से काम विकार से निवर्तूंगा । वह दिन मेरा परम कल्याण का होवेगा ।

पाचवां परिग्रह–सचित्त परिग्रह तो दास दासी, द्विपद, चतुष्पद, (पशु) आदि अनेक प्रकार के और अचित्त परिग्रह–सोना, चादी वस्त्र, आभूषण आदि अनेक प्रकार के हैं। उनकी ममता मूर्छा की, क्षेत्र घर आदि नव प्रकार के बाह्य परिग्रह और चौदह प्रकार के आभ्यन्तर परिग्रह को रखा, रखवाया और अनुमोदा, तथा रात्रि भोजन, अभक्ष्य आहारादि सबधी पाप दोष सेव्या हो, वह मुझे धिक्कार धिक्कार वारवार मिच्छामि दुक्कड । वह दिन मेरा धन्य हावेगा, जिस दिन सभी प्रकार के परिग्रह का

त्याग कर ससार का प्रपच से निवर्तुंगा । वह दिन मेरा परम कल्याण रूप होवेगा ।५।

छठा क्रोध—क्रोध करके अपनी आत्मा को तथा पर आत्मा को दु खी की ।६।

सातवा मान—अहकार भाव लाया, तीन गारव और आठ मद आदि किया ।७।

आठवा माया—धर्म सबधी तथा ससार सबधी अनेक कर्त्तव्यो मे कपट किया ।८।

नववा लोभ—मूर्च्छाभाव लाया, आशा तृष्णा वाछा आदि की ।९।

दसवा राग—मनपसद वस्तु से स्नेह किया ।१०।

ग्यारहवा द्वेष—अपसद वस्तु देख कर उस पर द्वेष किया ११

बारहवा कलह—अप्रशस्त (खराब) वचन बोल कर क्लेश उत्पन्न किया ।१२।

तेरहवा अभ्याख्यान—झूठा कलक दिया ।१३।

चौदहवा पैशून्य—दूसरे की चुगली की ।१४।

पद्रहवा परपरिवाद—दूसरे का अवगुणवाद (अवर्णवाद) बोला—निन्दा की । ।१५।

सोलहवा रति अरति—पाच इद्रिय के २३ विषय और २४० विकार हैं । इनमे मनपसद पर राग किया और अपसद पर द्वेष किया तथा सयम तप आदि पर अरति (अरुचि) की और आरभादिक असयम और प्रमाद मे रति(रुचि)भाव किया ।१६।

सत्रहवा माया मृषावाद—कपट सहित झूठ बोला ।१७।

अठारहवा मिथ्यादशनशल्य–श्री जिनेश्वरदेव के धम मे शका कखा आदि विपरीत श्रद्धा परूपणा की ।१८। ●

इस प्रकार अठारह पाप का द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से, जानते, अजानते, मन, वचन और काया से सेवन किया, कराया और अनुमोदा, दिया वा राओ वा एगओ वा परिसा गओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा, इस भव मे, पहिले के सख्यात, असख्यात और अनत भवो मे भवभ्रमण करते आज दिन तक + राग द्वेप, विषय, कपाय, आलस, प्रमाद आदि पौदगलिक प्रपच, परगुण पर्याय की विकल्प भूल की, ज्ञान की विराधना की, दशन की विराधना की, चारित्र की विराधना की, चारित्रा चारित्र की व तप की विराधना की । शुद्ध श्रद्धा, शील, सतोप, क्षमा आदि निज स्वरूप की विराधना की । उपशम, विवेक, सवर, सामायिक, पोसह, पडिक्कमणा, ध्यान, मौन आदि व्रत पच्चक्खान दान, शील तप वगैरह की विराधना की । परम कल्याणकारी इन बालो की आराधना पालनादिक मन वचन और काया से न नही की, नही कराई और नही अनुमोदी । छह आवश्यक सम्यक् प्रकार स विधि उपयोग सहित आराधा नही, पाला नही, फरसा नही, विधि उपयोग रहित निरादर-पन से किया, किंतु आदर सत्कार भाव भक्ति सहित नही

● इत्यादि यहाँ अठारह पापस्थानों की आलोयणा विशेष विस्तार पूवक अपने से बन इस प्रकार कहनी ।

+ यहा बालने वाले वत्तमान जो सवत् महिना और तिथि हो [redacted] कहे ।

किया। ज्ञान के चौदह, समकित के पाच, बारह व्रत के साठ, कर्मादान के पद्रह, सलेषणा के पाच, एव निन्नाणवे अतिचार मे, तथा १२४ अतिचार मे, तथा साधुजी के १२५ अतिचार मे, तथा बावन अनाचार का श्रद्धानादिक मे विराधना आदि जा कोई अतिक्रम व्यतिक्रम, अतिचार आदि सेवन किया, सेवन कराया, अनुमोदना की, जानता, अजानता मन, वचन काया से, उनका मुझे धिक्कार धिक्कार वारवार मिच्छामि दुक्कड।

मैने जीव को अजीव सद्दह्या परूप्या, अजीवको जीव सद्दह्या परूप्या, धम को अधम और अधर्म को धम सद्दह्या प्ररूप्या, तथा साधुजी का असाधु और असाधु को साधु सद्दह्या प्ररूप्या, तथा उत्तम पुरुष साधु मुनिराज महासतियाजी की सेवा भक्ति मान्यता आदि यथाविधि नही की, नही कराई, नही अनुमोदी, तथा असाधुओ की सेवा भक्ति मान्यता आदि का पक्ष किया, मुक्तिमार्ग मे ससार का माग, यावत् पच्चीस मिथ्यात्व सेवन किया, सेवन कराया, अनुमोदा, मन वचन और काया से, पच्चीस कपाय सबधी, पच्चीस क्रिया सबधी, तेतीस आशातना सबधी, ध्यान के १९ दोप, वदना के ३२ दोप, सामायिक के ३२ दोप, पोषध के १८ दोप सबधी मन वचन और काया से जो कोई पाप दोप लगा लगाया अनुमोदा, उसका मुझे धिक्कार धिक्कार वारवार मिच्छामि दुक्कड। महामोहनीय कर्मबध का तीस स्थानक को मन वचन और काया से सेवन किया, सेवन कराया, अनुमोदा, शील की नववाड तथा आठ प्रवचन माता की विराधनादि, श्रावक के इक्कीस गुण और

बारह व्रत की विराधनादि मन वचन और काया से की, कराई, अनुमोदी, तथा तीन अशुभ लेश्या के लक्षणो की और अन्य बोलो की विराधना की, चर्चा वार्त्ता वगैरह मे श्री जिनेश्वर देव का मार्ग लोपा, गोपा, नही माना, अछते की थापना की, छते की थापना नही की और अछते की निषेधना नही की, छते की थापना और अछते की निषेधना करने का नियम नही किया, कलुषता की, तथा ५ प्रकार के ज्ञानावरणीय बध का बोल, ऐसे छ प्रकार के दर्शनावरणीय बध का बोल, आठ कर्म की अशुभ प्रकृतिबध का, पचपन कारणो से, पाप की बयासी प्रकृत्ति बाधी, बधाई, अनुमोदी, मन वचन काया करके उनका मुझे धिक्कार धिक्कार वारवार मिच्छामि दुक्कड। एक एक बोल से लगाकर कोडाकोडी यावत् सख्याता असख्याता अनता बोलो मे से जानने योग्य बोलो का सम्यक् प्रकार जाना नही, सद्हा और परूप्या नही, तथा विपरीतपन से श्रद्धा आदि की, कराई, अनुमोदी, मन वचन और काया से, उनका मुझे धिक्कार धिक्कार वारवार मिच्छामि दुक्कड।

एक एक बोल से यावत अनता अनता बोलो मे छोडने योग्य बोल को छोडा नही, उनको मन वचन काया से सेवन किया, सेवन कराया और अनुमोदा, उनका मुझे धिक्कार धिक्कार वारवार मिच्छामि दुक्कड। एक एक बोल से लगा कर जाव अनता अनता बोलो मे आदरने योग्य बोलो को आदरा नही, आराधा नही, पाला नही, फरसा नही, विराधना खडना आदि की, कराई, अनुमोदी, मन वचन काया से, उनका मुझे

धिक्कार धिक्कार वारवार मिच्छामि दुक्कड । श्री जिन भगवतजी महाराज आपकी आज्ञा मे जो जो प्रमाद किया और सम्यक् प्रकार उद्यम नही किया, नही कराया, नही अनुमोदा, मन वचन काया करके, तथा अनाज्ञा मे उद्यम किया, कराया, अनुमोदा । एक अक्षर के अनन्तवे भाग मात्र दूसरा कोई स्वप्न-मात्र मे भी भगवत महाराज आपकी आज्ञा से न्यूनाधिक विपरीत प्रवर्त्ता हूँ, तो उनका मुझे धिक्कार धिक्कार वारवार मिच्छामि दुक्कड ।

## दोहा

श्रद्धा अशुद्ध प्ररूपणा, करी फरसना मोय ।
अनजाने पक्षपात मे, मिथ्या दुष्कृत मोय ।१।
सूत्र अर्थ जानू नही, अल्प बुद्धि अनजान ।
जिनभाषित सब शास्त्र का, अर्थ पाठ परमान ।२।
देव गुरु धर्म सूत्र को, नव तत्वादिक जाय ।
अधिका ओछा जो कह्या, मिथ्या दुष्कृत मोय ।३।
हू मगसेल्यो हो रह्यो, नही ज्ञान रस भीज ।
गुरु सेवा न करी सकु, किम मुझ कारज सीज ।४।
जाने देखे जे सुने, देवे सेवे मोय ।
अपराधी उन सबन को, बदला देशु सोय ।५।
गवन करूँ बुगचा रतन, दरब भाव सब कोय ।
लोकन मे प्रगट करू सूई पाई मोय ।६।
जैनधर्म शुद्ध पाय के, वरतु विषय कषाय ।
यह अचभा हो रह्या, जल मे लागी लाय ।७।

जितनी वस्तु जगत मे, नीच नीच से नीच ।
सबसे मैं पापी बुरो, फसुं मोह के बीच ।८।
एक कनक अरु कामिनो, दो माटी तलवार ।
उठचो थो जिन भजन को, बीच मे लिनो मार ।६।

## सवैया

मैं महापापी छाड के ससार छार, छार ही का विहार करूँ, अगला कुछ धोय कीच, फेर कीच बीच रहू, विषय सुख चारु मन्न प्रभुता वधारी है । करत फकीरी ऐसी अमीरी की आस करूँ, काहे को धिक्कार सिर पगडी उतारी है ।१०।

## दोहा

त्याग न कर सग्रह करूँ, विषय वमन जिम आहार ।
तुलसी ए मुझ पतित को, वारवार धिक्कार ।११।
राग द्वेष दो बीज है, कम वध फल देत ।
इनकी फांसी मे बध्यो, छूटू नही अचेत ।१२।
रतन वध्यो गठडी विषे, भानु छिप्यो घन माहि ।
सिंह पिजरा मे दियो जोर चले कछु नाहि ।१३।
बुरा बुरा सबको कहे, बुरा न दीसे कोय ।
जो घट शोधु आपनो, तो मोसम बुरो न कोय ।१४।
कामी कपटी लालची, कठण लोह को दाम ।
तुम पारस परसग थी, सुवरण थाशु स्वाम ।१५।

## श्लोक

मैं जपहीन हूँ तपहीन हूँ, प्रभु हीन सवर समगत ।

हे दयाल कृपाल करुणानिधि, आयो तुम शरणागत । प्रभु आयो तुम शरणागत ।१६।

## दोहा

नही विद्या नही वचन बल, नही धीरज गुण ज्ञान ।
तुलसीदास गरीब की, पत राखो भगवान् ।१७।
विषय कषाय अनादि को, भरियो रोग अगाध ।
वैद्यराज गुरु शरण से, पाउ चित्त समाध ।१८।
कहेवा मे आवे नही अवगुण भर्या अनत ।
लिखवा मे क्यू कर लिखू जाणो थो भगवत ।१६।
आठ कर्म प्रबल करी, भमियो जीव अनादि ।
आठ कर्म छेदन करी, पावे मुक्ति समाधि ।२०।
पथ कुपथ कारण करी, राग हानि वृद्धि थाय ।
इम पुण्य पाप किरिया करी, सुख दु ख जग मे पाय ।२१।
बाध्या बिन भुगते नही, बिन भुगत्या न छुटाय ।
आप ही करता भोगता, आप ही दूर कराय ।२२।
हू अविवेकी मोहवश, आख मोच अधियार ।
मकडी जाल बिछाय के, फसु आप धिक्कार ।२३।
सब भक्षी जिम अग्नि हू, तपियो विषय कषाय ।
स्वच्छन्दी अविनीत मैं, धर्मी ठग दु खदाय ।२४।
कहा भयो घर छाड के, तज्यो न माया सग ।
नाग तजी जिम काचली, विष नही तजिया अग ।२५।
आलस विषय कषाय वश, आरभ परिग्रह काज ।
योनि चोरासी लख भम्यो, अब तारो महाराज ।२६।

आतम निंदा शुद्ध भणी, गुणवत वदन भाव ।
राग द्वेप उपशम करी, सब से खमत खमाव ।२७।
पुत्र कुपुत्र जो मैं हुवो, अवगुण भर्यो अनत ।
अपनो विरुद विचार के, माफ करो भगवत ।२८।
शासनपति वर्द्धमानजी, तुम लग मेरी दौड ।
जैसे समुद्र जहाज बिन, सूझत और न ठौर ।२६।
भव भ्रमण ससार दु ख, ताका वार न पार ।
निर्लोभी सत गुरु बिना, कौन उतारे पार ।३०।
भवसागर ससार मे, दीपा श्री जिनराज ।
उद्यम करी पहोचे तीरे, बैठी धम जहाज ।३१।
पतित उद्धारन नाथजो, अपनो विरुद विचार ।
भूल चूक सब माहरी, खमिये बारबार ।३२।
माफ करा सब माहरा, आज तलक ना दोष ।
दीनदयाल देवो मुझे, श्रद्धा शील सतोष ।३३।
देव अरिहत गुरु निर्ग्रंथ, सवर निजरा धर्म ।
केवली भाषित शास्त्र है, ये ही जैन मत मर्म ।३४।
इस अपार ससार मे, अवर शरण नही कोय ।
या ते तुम पद कमल ही, भक्त सहायी होय ।३५।
छूटू पिछला पाप से, नवा न बाधु कोय ।
श्री गुरुदेव प्रसाद से, सफल मनारथ मोय ।३६।
आरभ परिग्रह त्यजी करी, समकित व्रत आराध ।
अन्त समय आलोय के, अनशन चित्त समाध ।३७।
तीन मनारथ ए कह्या, जे ध्यावे नित्य मन्न ।

शक्ति सार वरते सही, पावे शिव सुख घन्न ।३८।

श्री पच परमेष्टी भगवत गुरुदेव महाराजजी आपकी आज्ञा है, सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, सयम, सवर, निर्जरा और मक्तिमार्ग यथा शक्ति शुद्ध उपयोग सहित आराधने, पालने, फरसने, सेवने की आज्ञा है। वारवार शुभ योग सबधी, सज्झाय ध्यानादिक अभिग्रह, नियम, पच्चक्खाणादिक करने, करावने की समिति गुप्ति प्रमुख सर्व प्रकारे आज्ञा है।

निश्चय चित्त शुद्ध मुख पढत, तीन योग थिर थाय।
दुर्लभ दीसे कायरा, हलुकर्मी चित्त भाय।१।
अक्षर पद हीणो अधिक, भूल चूक जो होय।
अरिहत सिद्ध आतम साख से, मिथ्या दुष्कृत मोय।२।
भूल चूक मिच्छामि दुक्कड।

॥ इति श्री श्रावक लाला रणजीतसिंहजी कृत ॥

वृहदालोयणा सपूर्ण



# २ आलोयणा



अहोनाथजी पाप आलोऊ पाछला, दिन रातरा, केइ जातरा, किया पचेंद्रिय विनाश, मार्या गले देइ फास, घणा खाया मद्य-मास। दीनानाथजी, जोड़ू हाथजी, मानो बातजी। ते मुझ मिच्छामि दुक्कड ॥ टेर ॥१॥ अहो नाथजी प्राण लूटया छ कायना, केइ जाण मे, केइ अजाण मे, मैं नही जाणी पर पीडा, चाप्या कुथूया ने कीडा,खाया पान मेली बीडा ॥दीनानाथजी॥२॥ अहो नाथजी, वनस्पती तीन जातरी केइ भातरी, छमकी सातरी, तोड्या पत्र फल फूल, सेक्या गाजर कद मूल, खाया भर भर लूण ॥दीनानाथजी ॥३॥ अहोनाथजी आचार घाल्या हाथ सु, चीप्या दात सु घणी खात सु, मांही भर्या है मसाला, खाधा भर भर प्याला, आया फुलणियारा जाला ॥दीनानाथजी ॥४॥ अहोनाथजी पानी आलोच्या तलाब रा, कुआ बावरा, नदिया नालरा, फोडी सरवर नी पाल, तोडी तरुवर नी डाल, हम गिरा दिया गाल ॥दीनानाथजी ॥५॥ अहोनाथजी अधर आकाश ना झेलिया, भर भर मेलिया, ऊना ठण्डा भेलिया, दीना अथ अनथ, ढोल, किया अणजाण्या अघाल, जाणे माडी भैसा रोल ॥दीनानाथजी ॥६॥ अहोनाथजी मातासु बाल बिछोविया, घणा रोविया, दुधिया दाबिया, खाम्या नानडिया सा बाल, पराये पेटा पाडी झाल, तोड़्या पखियो रा माल ॥दीनानाथजी ॥७॥ अहोनाथजी जू माकड ने मारिया, रोकीने राखिया, रस्ते नाखिया तडके दिया माचा मेल, ऊपर उना पाणी ठेल, आगे होसी घणी हेल ॥दीनानाथजी॥८॥ अहोनाथजी सियाले मिगडी

करी, खीरा भरी, चवडे घरी, माही पड पड मरिया जीव, पाप किया निश दीव, दीधी नरका री नीव ॥दीनानाथजी ।९॥ अहो नाथजी उनाले वाय विजिया, फूल विछाविया, पाणी सिंचिया, कीधी बागाँ मांहे गोठ, खाया चूरमाने रोट, बांधी पाप तणी पोट ॥दीनानाथजी ॥१०॥ अहानाथजी चौमासे हल हाकिया, बैल भूखा राखिया, मार्या चाबूकिया, फोड्या पृथ्वी रा पेट, मार्या साप सपलेट, दया नही आणी ठेट ॥ दीनानाथजी ॥११॥ अहानाथजी जूना नवा कर वेचिया, सुलिया सचिया, अनसोया दीधा पीस, इल्या मारी दस वीस, दया नही आणी शीप ॥दीना- नाथजी ॥१२॥ अहोनाथजी दूध, दही, छाछ, आछरा, शरबत दाखरा, केरीपाकरा, घली घीरत ने तेल दिया उघाडा ही मेल, किडिया आई रेलम ठेल ॥दीना० ॥१३॥ अहोनाथजी कूड कपट छल ताकिया, नही भाखिया, छाना राखिया, बोल्या मृषावाद झूठ, धाडो पाड लाया लूट, जन्त्र मन्त्र मारी मूठ ॥दीना०॥१४॥ अहानाथजी परनारी धन चोरिया, होली खेलिया, गाइ गोरिया, देख्या तमाशा ने तीज, ताल्या पाडी होय हीज, गाल्या गाइ घणी रीज ॥दीना०॥१५॥ अहोनाथजी अवगुण वाद गुरु तणा, बोल्या घणा अणसुहावणा, मैं नही जाण्यो अज्ञानी, निंदा कीधी छानी छानी, मैं नही धाम्यो अन्न पाणी ॥दीना०॥१६॥ अहो नाथजी सूस किया मैं माटका, केई छोटका, किया खोटका, छाने छाने किया पाप, सो तो देखी रह्या आप, मारे थें छो माय बाप ॥दीना०॥१७। अहोनाथजी भोजन भली भली मानरा, केइ जातरा, खाया रातरा, पीधा अण छाण्या पाणी,

दया दिल नही आणी, पर पीडा न पिछाणी ।।दीना०।।१८।। अहोनाथजी सासु सोक सुहासणी, पाडोसणी, सताई घणी, मुख सु बाली मोठी गाल, मैं तो दिया कूडा आल, रागी तपसी बूढा बाल, जाकी कीधी न सभाल ।.दीना०।।१९।। अहोनाथजी स्त्री भात पडाविया, गभ गलाविया, जीव जलाविया, मारी जू ने फोडी लीख, बैठी पापी रे नजीक, नही मानी सतगुरु सीख ।।दीना०।।२०।। अहोनाथजी थापण राखी पारकी, साहुकार की, केइ हजार की, देता किधो सटपट माग्या तुरत गयो नट, कीधा समुलाइ गट ।।दीना०।।२१।। अहोनाथजी जप तप सयम शील रो, भणता ज्ञानरो, देता दानरो, इण सु मोक्ष नही पाय, पडयो करे हाय हाय, रुल्यो चौरासी के माय ।।दीना०।।२२।। अहोनाथजी मात पिता गुरुदेवा तणा, अविनीत पणा, कीधा घणा, रुलिया चौरासीरे माय, ज्यासु वाध्या वैर भाव, खमावु निर्मल भाव ।।दीना०।।२३।। अहोनाथजी सार करीने सभालजो, मती विसारजो, पार उतारजो, सवत उगणीसे बासट, सुणी मती कीजो हट, दर्शन दीजो म्हाने झट ।।दीना० ।।२४।। अहोनाथजी आलोयणा ऐसी कीजिये, कर्म छीजिये, मिच्छामि दुक्कड दीजिये, जयपुर मे जडाव,ज्यारो निर्मल भाव, जोड किधी चित्त चाव ।। दीनानाथजी०।.२५।।



# ३ आलोयणा

अधम मो सम नही कोई । मोय कैसे उवारोगे ॥
लख्यो मैं सकल जग जोई । मोय कैसे उवारोगे ॥टेर॥
सरागी देव मैं ध्याये । पान फल फूल चढवाये ।
हने पशू पूत हित चाये ॥मोय०॥१॥
कुगुरु की सेवा मैं कीनी । अहित शिक्षा विविध दीनी ॥
कुपथ की गैल गहि लीनी ॥मोय०॥२॥
सदा हिंसा धरम ध्यायो । कियो औरो से करवायो ॥
दयामय धरम बिसरायो ॥ मोय० ॥३॥
कुश्रुत मे सुन्यो अरु दाख्यो । जिनागम विरुद्ध मैं भाख्यो ॥
जान के हलाहल चाख्यो ॥ मोय०॥४॥
अठारे पापहु कीने । पराय प्राण हरली न ॥
झूठ वच बोल दु ख दीने ॥ मोय०॥
करी चोरी हरयो परधन्, हुया मे मुदित लखि कामन् ॥
कियो हा शील व्रत खडन् ॥ मोय०॥६॥
कुवानिज पचदश कर के, और दुष्कृत्य आचर के ॥
सचियो धन हरप धर के ॥ मोय०॥७॥
बडो क्रोधी मैं अभिमानी, छली लोभी औ दुर्घ्यानी ॥
राग रुप पास लिपटानी ॥ मोय० ॥८॥
बिना कारण कलह कीनो । दोप निज अन्य शिर दीनो ॥
पिशुनता करण परवीनो ॥ मोय० ॥९॥
परपरिवाद को रसियो । कदा रति अरति मे फसियो ॥
लवी माया मृषा हसिया ॥मोय० ॥१०॥

रच्यो मिथ्यात्व के रस मे । कुश्रद्धा वसी नस नस मे ॥
फस्यो लोकीक के जस मे ॥मोय० ॥११॥
तत्त्व सरधान को तज के । होम पूजादि को यज के ॥
भम्यो भवभव कुगुरु भज के ॥मोय०॥१२॥
जीव यत्ना न उर ग्रानी । विना छान्यो पियो पानी ॥
जिवाडी नाँहि जीवानी ॥मोय०॥१३॥
कियो हा ! रात्रि मे भोजन् । पचायो विन शुध्यो ओदन् ॥
भख्यो मद मास तन पोषन् ॥मोय०॥१४॥
कद मूलादि को चूरन् । करी कियो उदर पूरन् ॥
बन्यो मैं शूर तरु भूरन् ॥मोय०॥१५॥
सेविये सात मैं कुविसन,वचन दे के न पारयो पन् ॥
बडो ही धीठ ग्ररु कृतघन् ॥मोय०॥१६॥
वेद घर कर जनम धारन् । कियो धातु तनो जारन् ॥
औषधी दी गरभ गारन ॥मोय०॥१७॥
जपे मैं जाप नर मारन् । पराई त्रिया वश कारन् ॥
भज्यो ना तू तिरन् तारन् ॥मोय०॥१८॥
वनाये शूर भव मे भूर । नाल गोला शतघ्नी तूर ॥
किये सग्राम में भरपूर ॥मोय०॥१९॥
ग्रधम जोनी जनम पा के । किये ग्रघ निर्दयी था के ॥
कहा लो कहू मैं गा के ॥मोय०॥२०॥
न मैंने साधु व्रत धारे । श्राद्ध के व्रत न स्वीकारे ॥
ग्रादरे तो न शुद्ध पारे ॥मोय०॥२१॥
ज्ञान को मान उर ग्रानो । भ्रम जिन बैन मे ठानो ॥

करी तप कियो नियानो ॥मोय०॥२२॥
रुल्यो ताते चहू गति मे । पडयो परभाव आपत्ति मे ॥
न रमियो शुद्ध परिणति मे ॥मोय०॥२३॥
उवारे तुम पतित प्राणी । सुनी यो सुगुरु मुख बानी ॥
सरण ताते लई आनी ॥मोय०॥२४॥
लोक माही अणु जेते । ऐव मोमे भरे तेते ॥
गाय के कहू मैं केते ॥मोय०॥२५॥
फैल मेरे न चित्त दीजें, विरुद अपनो विचारीजें ॥
दीन जानी दया कीजें ॥मोय०॥२६॥
एतली ही अरज मानो । आपणो दास कर जानो ॥
पलट द्यो पढम गुणठानो ॥मोय०॥२७॥
किये जे पाप भव भव मे । तिन्हे द्यु कोटि धिक् अव मैं ।
छुडास्यो छुटस्यु जब मैं ॥मोय०॥२८॥
पूर्व जे किये अघ भारी । तिन्हे मिथ्या दुकृत म्हारी ॥
साख अरिहत प्रभु थारी ॥मोय०॥२९॥
मगन मुनि चरण शिर नाई, मुनि 'माधव' ने चित्त लाई ॥
पाप आलोवना गाई ॥मोय०॥३०॥

# ४ आलोयणा

परम देव नो देव तु खरो, धम ताहरा मे नवी कर्यो ।
भरम मा भम्यो तू नवि गम्यो, कम पाश मा हू अति दम्यो ॥१॥
गरीव प्राणी ना प्राण मे हण्या, त्रस ने स्थावरो जीव ना गण्या ।
थरर ध्रूजता मोत थी डरी, अरर अेहनी धात मे करी ॥२॥

सद-सभा जइ झूठ बोलिया, धर्मी जीवनो मम खोलियो ।
सद्गुणी शिरे आल आपिया, अरर पाप ना पथ थापिया ॥३॥
अदत्त दानथी हू नवी डर्यो, परधनो हरी केर मे कर्यो ।
तस्करो तणा तानमा चढ्यो, अरर पाप ना पुज मा पड्यो ॥४॥
रमणी रग मा अग उलस्यु विषय सुख मा चित्तडु वस्यु ।
शियल भग नो दोष ना गण्यो, अरर हायरे वावरो बण्यो ॥५॥
अथिर दाम मा हु रह्यो अडी, धम वात तो चित्त ना चडी ।
उद्धत मोह मा हु थयो अति, अरर माहरी शी थशे गति ॥६॥
क्रूर भाव थी क्रोध मे कर्यो, सज्जन दुभवी रोष मा रह्यो ।
सव स्वजन थी सप छोडियो तरण तोल थी तुच्छ हू थयो ॥७॥
मत्सर मन थी मे बहु कर्यो, ममत्व भाव थी हू बहु भर्यो ।
मद छके चड्या मान मा अड्या, अरर गर्व ना कूप मा पड्यो ॥८॥
दगलबाजी ए हु बहु रम्यो, कूड कपट मा काल निगम्यो ।
मुख मीठु लवी सष्टि भोलवी, अरर केमरे भूल से भवी ॥९॥
धन हीराकणी मोती ने मणी, अखूट अथ नो हु थयो धणी ।
अधिक आश तो अतरे घणी, अरर लोभ ने ना शक्यो हणी ।१०।
मगन मन थी स्वजनो परे, हित घणु धरी पोषिया खरे ।
तरकटी तणा फद मा फस्यो, अरर राग थी ना लह्यो कशो ।११।
दिल दुरी गयु द्वेष दद मा गुण नवी गण्या मेरी मद मा ।
भरुण आखडा राष थी भरी, अरर सव नो हू थयो अरि ।१२।
निज कुटु बने नातजात मा वढी पड्यो हु तो वातवात मा ।
अबूझ आतमा घान मा घड्यो, अरर क्लेश ना कूप मा पड्यो ।१३।
अणहुना दीधा आल अन्यने, अलिक उच्चरी मेल्यु धनने ।
सद्गुरु तणा सग ना कर्यो, अरर पाप थी पिंड मैं भर्यो ।१४।

पर नी चोवटे चुगली करी, नृप सभा जुठी साहेदी भरी ।
पिशुन धूत हु लाच लालची, पशुगणे रह्यो पाप मा पची ।१५।
परपुठे परा दोप दाखवा, जश तणो अति स्वाद चाखवा ।
रहस्य वात तो मे करी छनी, भव अरण्य मा हु रुल्यो अति ।१६।
अधम काम मा हप मे धर्यो, धम ध्यान मा अमर्पे भर्यो ।
दुर्गुणे रच्यो, मोह मा मच्यो, अरर कर्म ना नृत्य मा नच्यो ।१७।
छल विद्या करी कम सचिया, जुठ लवी घणु लोक वचिया ।
पतित राक ने छेनर्या बहु, अरर पाप हु केटला कहु ।१८।
शरीर शोध तो मे नवि कर्यो, जड प्रसग थी योनि मा फर्यो ।
शुद्ध विचार तो चित्त ना चड्या, मिछत्त शल्य तो मुजने नड्यो ।।
कम वेरीओ वीटियो मने, करगरी करूं अर्ज जिन ने ।
कर ग्रहो प्रभु राक जाणी ने, दिल दया धरो महेर प्राणी ने ।२०।
तकशिरो घणी को शके गणी, बक्षिमो गुनाह जगत ना धणी ।
रीझ करी खरी त्रोडी त्रास ने, शरण राखजो खोडीदास ने ।२१।
नभ भुजा अहि चद्र मा ग्रही, पटण प्राची थी पश्चिमे सही ।
चतुरमास मा वन्दरे रही, ललित छन्दनी जोड आ कही ।२२।

# ५ आलोयणा

शरण मैं लीनो तुम चरणारा
हे जिन ! हर भव वास पाश, अरदास दास की धारो ।टेर।
भव अनन्त से भ्रमण करत, भव विपन गहन मझारो ।
भ्रम तम माहि नाहि पथ सूझे, करहु ज्ञान उजियारो ।१।
भू भृत् अष्ट कर्म दुगम महि, मोह मेरु गिरि भारो ।
काल अनन्त उलघत वीत्यो, अजहूँ न पायो पारो ।२।

लघत वढत नाथ ! प्रति छिन ये, ऐसो विषम पहारो ।
चरण रूप देओ चरण कृपा कर, तो नहि लघत वारो ।३।
विषय भुजग डसन को धावे, कर विकार फुकारो ।
होय रह्यो भयभीत जिनद ! जिम तिम कर इन्हे विडारो ।।
मृग मन मौज करे मनमानी, कुके लालच स्यारो ।
मान मृगादन द्वीपी मद दूठ, मूके नहि मम लारो ।५।
है बेराह वराह भयङ्कर, भ्रम मल्लूक करारो ।
सशय शशक शक नहि माने, वृक भयदा विभचारो ।६।
मदन मत्त गज फिरै घूमता, चहे तरु शील उखारो ।
हे जिनसिह ! प्रकट मम हृदये, भव-वन, विघन विदारो ।७।
वार अनन्त निगोद माहि, मर मर लीनो अवतारो ।
कहा लो कथा व्यथा को वरणी, कांपत हृदय हमारो ।८।
पच सै अरु पट्तीस अधिक, पूरे पैंसठ हज्जारो ।
जनम मरण किये दो घटिका मे, तू सब जानन हारो ।६।
पुनि नारक पर्य्याय पाय, वहु वार मह्यो सहारो ।
भोगी विविध वेदना वेवश, परमाधामी मारो ।१०।
भू जल जलन पवन तरु-त्रश तन, धार अनन्ती वारो ।
भावी वश भ्रमराक्षर न्याये, पायो मनुष जमारो ।११।
प्रवल पुण्य से लख्यो जिनद तू, सकट को हरणारो ।
परौं पाँय कर जोर नाय शिर, झट मम अठ दुठ टारो ।१२।
हू मति-हीन दीन द्रवलिंगी, कपटी कुटिल लवारो ।
मेरी गति मति लखो नाथ ! तुम, अपनो विरुद विचारो ।।
चरण करणयुत सुगुरु 'मगनमुनि', कविकुल शिर शृगारो ।
तासु पसाय नमाय माथ मुनि, माधव' करत पुकारो ।१४।

# ६ आलोयणा



आदिश्वर आदे नमू, नमू शान्ति जिनराय ॥
नमू नेम फणधार ने, वर्द्धमान सुखदाय ॥१॥
आदि 'र' कार अते 'म' कार, तिण मे जिन जो होय ॥
पाचो अग नमाय के, नमू नमू नित्य सोय ॥२॥
ॐ ह्री श्री नमू, नमू साधु गुणधार ॥
अ सि आ उ-सा नमू दशन ज्ञान सुखकार ॥३॥
ॐ सोहं आत्मा, ह्री पच पद जान ॥
श्री सम्यक् ज्ञान है, ऐसो तत्त्व पहिचान ॥४॥
त्रिवर्ण ओकार है, व्याकरण सिद्ध करेह ॥
आकार उकार म कार की, मात्रा अर्ध धरेह ॥५॥
मात्रा ऊपर बिन्दु है, ताको नमन करेह ॥
ता सम निमल आत्मा, ऐसो भाव धरेह ॥६॥
श्रावक ने वलि श्राविका, श्रमणी ने अणगार ॥
चौमासी पक्खी सवत्सरी, करे आलोयणा सार ॥७॥

अठारह पापा की आलोयणा

ढाल–प्राणी थें पाप किया घणा, नही कियो धर्म लगारो रे ॥
इण भव की चिंता करी, परभव नाही विचारो रे ॥प्रा ॥१॥
हिंसा कीनी जीव की, बोल्या झूठ अपारो रे ॥
चोरी अन्यायी थें करी, परिग्रह सावद्य व्यापारो रे ॥प्रा ॥२॥
क्रोध करी गाली दीवी, मूछ्या ताव अभिमानो रे ॥
कपट करी ठगीया घणा, लोभ को नही परिमाणो रे ॥प्रा ॥३॥

लघत बढत नाथ ! प्रति छिन ये, ऐसो विषम पहारो ।
चरण रूप देओ चरण कृपा कर, तो नहिं लघत वारा ।३।
विषय भुजग डसन को धावे, कर विकार फुकारो ।
हाय रह्यो भयभीत जिनद ! जिम तिम कर इन्हे विडारा ।।
मृग मन मौज करे मनमानी, कूके लालच स्यारा ।
मान मृगादन द्वीपी मद दूठ, मूके नहि मम लारो ।५।
है बराह वराह भयङ्कर, भ्रम भल्लूक करारा ।
सशय शशक शक नहिं माने, वृक भयदा विभचारा ।६।
मदन मत्त गज फिरै घूमतो, चहै तरु शील उखारा ।
हे जिनसिंह ! प्रकट मम हृदये, भव-वन, विघन विदारो ।७।
बार अनन्त निगोद माहि, मर-मर लीनो अवतारो ।
कहा लो कथा व्यथा की बरणौ, कापत हृदय हमारो ।८।
पच सै अरु पटतीस अधिक, पूरे पैसठ हज्जारो ।
जनम मरण किय दो घटिका मे, तू सब जानन हारो ।६।
पुनि नारक पर्य्याय पाय, बहु बार मह्यो सहारा ।
भागी विविध वेदना बवश, परमाधामी मारो ।१०।
भू जल जलन पवन तरु-त्रश तन, धार अनन्ती वारा ।
भावी वश भ्रमराक्षर न्याये, पायो मनुय जमारो ।११।
प्रवल पुण्य से लख्यो जिनद तू, सकट को हरणारो ।
परौ पांय कर जोर नाय शिर, झट मम अठ दुठ टारा ।१२।
हू मति-हीन दीन द्रवलिंगी, कपटी कुटिल लवारो ।
मेरी गति मति लखा नाथ ! तुम, अपना विरुद विचारा ।।
चरण करणयुत सुगुरु 'मगनमुनि', कविकुल शिर शृगारो ।
तासु पसाय नमाय माथ मुनि, माधव' करत पुकारा ।१४।

## ६ आलोयणा



आदिश्वर आदे नमू, नमू शान्ति जिनराय ॥
नमू नेम फणधार ने, वर्द्धमान सुखदाय ॥१॥
आदि 'र' कार अते 'म' कार, तिण मे जिन जो होय ॥
पाचो अग नमाय के, नमू नमू नित्य सोय ॥२॥
ॐ ह्री श्री नमू, नमू साधु गुणधार ॥
अ सि आ उ-सा नमू दर्शन ज्ञान सुखकार ॥३॥
ॐ सोह्ं आत्मा, ह्री पच पद जान ॥
श्रीं सम्यक् ज्ञान है, ऐसो तत्त्व पहिचान ॥४॥
त्रिवर्ण ओकार है, व्याकरण सिद्ध करेह ॥
आकार उकार म कार की, मात्रा अर्ध धरेह ॥५॥
मात्रा ऊपर बिन्दु है, ताको नमन करेह ॥
ता सम निर्मल आत्मा, ऐसो भाव धरेह ॥६॥
श्रावक ने वलि श्राविका, श्रमणी ने अणगार ॥
चौमासी पक्खी सवत्सरी, करे आलोयणा सार ॥७॥

अठारह पापा की आलोयणा

ढाल–प्राणी थें पाप किया घणा, नही कियो धर्म लगारो रे ॥
इण भव की चिता करी, परभव नाही विचारो रे ॥प्रा ॥१॥
हिंसा कीनी जीव की, बोल्या झूठ अपारो रे ॥
चोरी अन्यायी थें करी, परिग्रह सावद्य व्यापारो रे ॥प्रा ॥२॥
क्रोध करी गाली दीवी, मूर्छा ताव अभिमानो रे ॥
कपट करी ठगीया घणा, लोभ को नही परिमाणो रे ॥प्रा ॥३॥

स्नेह करी नाता जोडिया, हास्य करी नाता तोडया रे ॥
आपण पुत्र ने पालिया, पर पूत कडका मोडया रे ॥प्रा ॥४॥
क्लेश कदाग्रह थे किया, कूडा आल जो दीधा रे ॥
चाडी चुगली थे करी, कीधो पारकी निंदा रे ॥ प्रा ॥ ५ ॥
स्वऋद्धी देख राजी हुवो, पर की देख बेराजी रे ॥
ममकारी माया बालने, खेल्यो कपट की बाजी रे ॥ प्रा ॥६॥
कुगुरु कुदेव सेविया, हिंसा मे धम बताया रे ॥
मिथ्या पव आराधिया, बड पीपल पूजाया रे ॥ प्रा ॥ ७॥

ऐसे १८ पापस्थान के विषे जो कोई अतिचार दोष लगा हो तो देवसी, पक्खी, चौमासी और सवत्सरी सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥

पच्चीस मिथ्यात्व

कुदेव कुगुरु-कुधर्म सेवतो, नही छोडे अभिग्रही टेको रे ॥
सब देव-गुरु धर्म सारीखा, अनभिग्रही न विवेको रे ॥ प्रा ॥८॥
अभिनिवेशी मिथ्यात्वी हुवो, अथ परूप्या विरुद्धो रे ॥
सशय–शका पुण्य पाप की, अनाभोगी अशुद्धो रे ॥ प्रा ॥६॥
लौकिक, लोकोत्तर कुप्रवचन, कुमाग से कीनी प्रीतो रे ॥
ओछा अधिका परूपिया, जिन वचन विपरीतो रे ॥प्रा ॥१०॥
छकाया जीव ने अजीव कह्या, पुद्गल जीव बताया रे ॥
दया शील अधर्म कह्या, हिंसा मे धम कहाया रे ॥ प्रा ॥११॥
रत्नत्रय साधन करे, तिनको असाधु बताया रे ॥
छकाया को गटको करे, साधुजी कही पूजाया रे ॥ प्रा ॥१२॥
व्याह सगाई ससार का, कारज मुक्ति बताया रे ॥

दान शीयल तप भावना, ससारी काय समझाया रे ॥ प्रा ॥१३॥
सिद्धा ने स कर्मी कह्या, कर्मी अकर्मी ठहराया रे ॥
अविनय अक्रिय, अज्ञानता असातना मिथ्यात्व दर्शाया रे ॥प्रा ।१४।
जीव रूले ससार मे, सेव्या पच्चीस मिथ्यातो रे ॥
खोटा जाणी मै परिहरूँ, नही सेऊ कोई भांता रे ॥प्रा ॥१५॥

ऐसे पच्चीस प्रकार के मिथ्यात्व मे से, कोई भी मिथ्यात्व मैने सेवन किया हो, कराया हो, अनुमोदन किया हो, तो देवसी, पक्खी, चौमासी, सवत्सरी सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

प्रथम व्रत

बलदा रे सिर जूडा दिया, अकुश टोच चलाया रे ।
भात पाणी रोकी दिया, गाढा बन्धण बधाया रे ॥१६॥
सूआ, सारस, मोर ने, पिंजरा माह घाल्या रे ।
सामर रोज ने हिरणला, घणा जीवां ने पाल्या रे ॥१७॥
बलदा रे मुख छीकी दीनी, बाछरु दूध रुकाया रे ।
वियोग सोग पडाविया, ऊभा रूँख सुखाया रे ॥१८॥
ऊट बलद कीडा पडया, अधिक भार लदाया रे ।
ताप ठण्ड मे चलाविया, सीग पूछ कटाया रे ॥१९॥
'ब्रह्मदत्त राय' शिकार से, 'बक' राक्षस माम खाया रे ।
नर्क गया जीव घात से, भव अनेक बधाया रे ॥२०॥
नघूक राजा डूबियो हिंसा के प्रतापो रे ।
हिंसा फल कडवा घणा, आगम सुण दु ख विपाको रे ॥२१॥

ऐसे प्रथम व्रत में, दोप अतिचार लगा हो, तो देवसी, पक्खी, चौमासी, सवत्सरी सम्बधी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

द्वितीय व्रत

शका करी कलक दिया, अणहोता कलेश जगाया रे ।
रहस्य मरम तू बोलियो, अछता दोष लगाया रे ॥२२॥
कन्या गा भूमि कारणे आल पपाल तू बोल्यो रे ।
पारकी थापण दबाय ने, उलटी चाल तू चाल्यो रे ॥२३॥
जाली कागज खोटा लिख्या, साख खोटी मे भरवामी रे ।
पाणी पियो थे छाण ने, पियो लोही अणछाणी रे ॥२४॥
"सत्यघोष" थापण दाब ने झूठी महिमा फैलाई रे ।
अत हुआ पछतावणो, गया दुर्गति माहि रे ॥२५॥
असत्य भाषा नही बोलिये, प्रतीति उठ जाव रे ।
वसु राजा मिश्र बोलने, भव अनन्त बधाया रे ॥२६॥

ऐसे द्वितीय व्रत मे जो कोई दोष अतिचार लगा हो तो देवसी, पक्खी, चौमासी, सवत्सरी सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

ततीय व्रत

चारी की वस्तु लीवी, चोरो ने सहाज्य दीधो रे ।
राज विरुद्ध ताला मापा, वस्तु भेल सभेल कीधो रे ॥२७॥
आज्ञा विना वस्तु पारकी, लेइ हुवो घणो राजी रे ।
मित्र बनी धन छीनिया, पर घात बछो पाजी रे ॥२८॥
आपण अथवा कुटम्ब के, सज्जन प्रेमी काजे रे ॥
करे करावे चारी कम, देव गुरु से न लाजे रे ॥२९॥
मार पडी मादा सिरे घेवर घर वाला खाया रे ।
पर भव की ज्ञानी कह्, इण भव मे दुख पाया रे ॥३०॥

ऐसे तृतीय व्रत मे दोष अतिचार लगा हो तो देवसी, पक्खी, चौमासी और सवत्सरी सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

चतुथ व्रत

घर छोडी पर स्त्री रम्यो, लोका मे अपयश लियो रे ।
धन गमायो गाँठ को, फिट फिट सहु कियो रे ॥३१॥
काम अन्ध तू हाय ने, नही गिण्यो पुण्य पापो रे ।
सव ज्ञाति की भारजा, माता भगिनी को खोयो आपो रे ॥३२॥
इतर थोडा काल की, ऊमर छोटी नारो रे ।
तिण से ही क्रीडा करी, लागो तुझ अतिचारो रे ॥३३॥
विधवा किसवण नारी से, दाम दे प्रीत लगाई रे ।
के दूजाने मेलिया, व्याह सगाई कराई रे ॥३४॥
विपय अभिलाषा करी, अनेक पाप कमाया रे ।
काम विकार बधाविया, मनुष्य भव गँवाया रे ॥३५॥
रावण पद्मनाभ मणीरथ, परस्त्री का रसिया रे ।
राज अने लाज सब तजी दुगति मे जाई वसिया रे ।३६।

ऐसे चौथे व्रत के विपय मे जो कोई अतिचार दोष लगे हों तो देवसी पक्खी, चौमासी, सवत्सरी सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

पचम व्रत

खेत वत्थु हिरण सुवण, धन धान द्विपद चऊपदो रे ।
धातु सर्व प्रकार की यो परिग्रह नव भेदो रे ॥३७॥
परिग्रह मूर्छा घणो, दिन दिन अधिक बधाया रे ।
धन धन करतो मरी गयो, हिरदे समता न लायो रे ॥३८॥

कृत्य अकृत्य न देखता, नही सोचे न्याय अन्यायो रे ।
झूठ–चारी हिंसा करे, धन तृष्णा मे लुभायो रे ॥३९॥
खोडा बेडी दड भोगवे, सूली फासी कोई जावे रे ।
गुप्त मृत्यु से केइ मरे, जाका पता नही पावे रे ॥४०॥
नही सुकृत कियो हाथ से, मूजी मे नाम लिखायो रे ।
बेटो ज्युं पाल पोस ने, धन दूजा ने भोलायो रे ॥४१॥
धन म्हारो हूँ धन को धणी, धन मे धम गँमायो रे ।
आठमो चक्री नर्क साप्तमी, तृष्णा फल यह पायो रे ॥४२॥

एस पाचवे व्रत के विषय मे जो कोई अतिचार दोष लगा हो तो दवसी, पवखी, चौमासी और सवत्सरी सबधी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

षष्ठम व्रत

देश देशावर मे भमे, जिसकी मर्यादा न काई रे ।
अव्रत नाला नही रोकिया, सब की क्रिया आई रे ॥४३॥
लोभवश मर्यादा लोपने, विदेशी वस्तु मगाई रे ।
धम ने धन दानो गया, कैसी करी है कमाई रे ॥४४॥
स्वामी हुक्म या व्यापार के, कारण से तू भमियो रे ।
अथवा सलानी जीवडो, धन जोबन को छकियो रे ॥४५॥

ऐस छठे व्रत मे जो कोई दोष अतिचार लगा हो तो देवसी, पक्खी, चौमासी, सवत्सरी सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

सप्तम व्रत

वस्तु भोग-उपभोग की, नही मर्यादा थारे रे ।
मदा अमदा जाणे नही, यों मानव भव हारे रे ॥४६॥

उल्लण दतण फल अब्भगण, उवट्टण मजण वत्थो रे ।
विलेपण धूप पुप्फ पेज विही, भूपण वाहण कत्थो रे ॥४७॥
भक्खण आदण सूप विगय विही, साग महूर वखाणो रे ।
जीमण पाणी मुखवास, पण्ही सयण तुम जाणो रे ॥४८॥
सचित्त द्रव्य छब्बीस की, मर्यादा करो भाई रे ।
आगम के अनुसार से, देसू अर्थ सुणाई रे ॥४६॥
रुमाल भाँत-भाँत के, सण सूत ने घासो रे ।
ऊन रेशमी जात का, घणा राख तोपासो रे ॥५०॥
हरिया वृक्ष तोडने, दातुन तू ही करतो रे ।
फल भखे बहु बीज का तिर्यंच ज्यू तू चरतो रे ॥५१॥
तेल फुलेल लगावता, बन रह्यो भोगी भमरो रे ।
पीठी मर्दन अरु स्नान कर, ढोले पाणी अपारो रे ॥५२॥
झीणा वस्त्रो ने धारतो, तुर्रा किलगी लगातो रे ।
जामारे जरकस पहेरता, पटका कमर बधातो रे ॥५३॥
चूवा चदन लगावतो, गले फूलो की माला रे ।
फूला का बगला रचावतो, फूलो मे सज रसाला रे ॥५४॥
धूप खेवी धूओ कियो, माखी मच्छर मराया रे ।
मिश्री मिलाय दूध पीवतो लोही मास बधाया रे ॥५५॥
भूपण विविध प्रकार का, ककण कदोरा छल्ला रे ।
मोती माला ने चोकडा, भुजवध पहेरिया भला रे ॥५६॥
कडा ताडा विछिया वाजणा, गले नवसर हारो रे ।
टोटी कुडल और झूमका, और भी गेणा अपारो रे ॥५७॥
हाथी घोडा और पालखी पिन्नस ने सुखपालो रे ।

तामजाम और नाल की, गाडी रथ चढ चाल्यो रे ॥५८॥
लाडू पेडा और लापसी, घेवर जलेबी खाई रे ।
खाता खाता उमर गई, तृष्णा कोई न पुराई रे ॥५६॥
विगय रस छोडया नही, काल सिराण आया रे ।
चावल ने सीरा पूरी, बूढा चित्त उमायो रे ॥६०॥
साग बणाया कई भात का, तलिया छुगार्या धुगार्या रे ।
घत मसाला डालने, आरभी खूब बनाया रे ॥६१॥
दाख दाडम ने खोपरा, मेवा कइ भात भातो रे ।
पिस्ता बादाम चारारी दाणा, स्वाद लेई लेई खातो रे ॥६२॥
जीमण तू केइ जीमता, तेहना नही प्रमाणो रे ।
आरभ हावे माटका, दोष लगावे अजाणो रे ॥६३॥
शीतादक सुगधोदक, उष्णोदक मे लेवे र ।
नदी कुंआ ने वावडी, अण छाण्यो जल सेवे रे ॥६४॥
लोग सुपारी इलायची, नित-नित चावतो बीडा रे ।
निंदा चुगली कीधी घणी, तिण मुख पडिया कीडा र ॥६५॥
मखमली विलायती पहिनतो, माजडी लाह जडातो रे ।
पावडियाँ पेहरी चालता, घणी होवे जीव घातो रे ॥६६॥
गादी गलीचा पर बैठना, ढोल्या सेज बिछाया रे ।
चन्द्र-वदन तिरिया सगे, सेजे रमी सुखपाया रे ॥६७॥
पादीना कोथमोर की, चटनी कर कर खातो रे ।
ऊपर से लूण नाखतो, नीम्बू रस निचाता रे ॥६८॥
खाण की गिणती नही, नही द्रव्य परमाणो रे ।
सब ही को प्रिया लगायना, अब ता समझ हिये आणा रे ।६६।

अपक्क आहार थें कियो, के थे दुपक्क पकाया रे ।
वेंगण भरीता थे किया, भुट्टा होरा भुजी खाया रे ॥७०॥
थोडा खाया ने घणा नाखिया, जीवा की जतना न काई रे ।
द्रव्य भावे तू डूबियो गुरु विन समझ न आई रे ॥७१॥
पत्रावली मे जीमता, त्रस स्थावर की घाता रे ।
एठवाडो घणो नाखतो, दोप लगातो साक्षातो रे ॥७२॥
अभक्ष बावीस जाणे नहीं, न जाणे तेहना दोपो रे ।
मनुष्य भव ने पाय ने, पाप से आत्मा पोपो रे ॥७३॥
रात्रि भोजन थें किया, अण छाण्यो जल पीया रे ।
अनत काय जमीकद का, निशि दिन भक्षण कीधा रे ॥७४॥
मद्य महुवा ने सडावतो, कीडा किलविल करता रे ।
सर्व इकट्ठा पीवता, मध्यम नर आचरता रे ॥७५॥
त्रस स्थावर हिंसा घणी, दया को नही रहे असा रे ।
लाज मर्यादा खोय ने, लजाया मात तात वशो रे ॥७६॥
तेल लूणी ने घृत का, व्यापार से घणो राजी रे ।
कम उदय जब आवसी, काइ करसी पाजी रे ॥७७॥
भागा पीकर छक रह्यो, काई नही रही सुद्धो रे ।
कपडा गमावे गाठ का, होय रह्यो बेसुद्धो रे ॥७८॥
गाजा तमाखू पीवतो, आकोती खाई छकियो रे ।
माता भगिनी भारिया, देखी ज्यो त्यो बकियो रे ॥७९॥
ऊबर अजीर ने पीपली, तीनो फलो मे जीव रासो रे ।
ते त्यागन कीधा विना, माठी गत हासी वासो रे ॥८०॥
गडा काचो गर्भ है, आचारज इम भाखे रे ।

वडी पीलो मे जीव है, आगम की है साखो रे ॥८१॥
आचार केइ भात का, खावण ने घणो रसियो रे ।
नीलण-फूलण देखे नही, रसेन्द्रिय मे फसियो रे ॥८२॥
जिण मे फूलण शका नही, नही त्रस जीव की घातो रे ।
तिण मे जीव बतावणा, मानो मिथ्या वातो रे ॥८३॥
अनुत्तरोववाई सूत्र मे, ठण्डो आहार मुनि लेवे रे ।
रस चलित फूलण सहित, कदापि नही सेवे रे ॥८४॥
"दशवैकालिक" ठाणाग मे, त्रस जीव आठ ठेकाणो रे ।
"आवश्यक व्रत सातमे" वावीस अभक्ष + वखाणो रे ॥८५॥

ऐसे सातवे व्रत मे दोष अतिचार लगा हो तो देवसी, पक्खी, चौमासी और सवत्सरी सम्बधी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

पन्द्रह कर्मादान

अग्नि आरम्भ थें किया, चूना का आव कराया रे ।
वन मे भाडी लेय ने, घणा वृक्ष कटाया रे ॥८६॥
कोयला कर्म ते किया, सोनो ने रूपो तपाई रे ।
शीत निवारण कारणे, सिगडियाँ सिलगाई रे ॥८७॥
गाडा गाडी रथ पालखो, किया थें व्यापारो रे ।
ऊट वलद भाडे दिया, नही श्रावक आचारो रे ॥८८॥
डुगर पत्थर फोडाविया, देवल देव घराया रे ।
हीरा पन्ना कढाविया, मन्दिर महल पडाया रे ॥८९॥

---

+ इस मान्यता में मतभेद है—दोशी ।

नवीन नारी नर सेज मे, ग्रस्फालन कर्म कमाया रे ।
धरती मे दारू विछायने, रोज उडाइ दिया रे ॥९०॥
दात चिराई, सीग काटिया, चमरी गाय पूछ लीधा रे ।
लाख तोडाइ वृक्ष की, व्यापार रस का कीधा रे ॥९१॥
सोमल सख थें वणजिया, ते खाया प्राण जावे रे ।
यन्त्र केइ चलाविया, घणा जीव कष्ट पावे रे ॥९२॥
व्यापार गुली का थें किया, रगण पाखा कराया रे ।
वैल घोडा कुटाविया, निलछ्रण कर्म कीधा रे ॥९३॥
दव दिया वन मे घणा, हरिया वृक्ष जलाया रे ।
धन खाया नाका तणा हिरदे दव लगाया रे ॥९४॥
पाल तालाव फाडाविया, मच्छ कच्छ मर जावे रे ।
लाभी नर ममझे नही, शालि गेहूं वुवावे रे ॥९५॥
कुत्ता बिल्ली पालने, जीवा की घात करावे र ।
अव्रन तू पोपे यो ही, बात न व्रत की सुहावे रे ॥९६॥
ऐसे पन्द्रह कर्मादान के विषय मे दोष अतिचार लगा हो तो देवसी, पक्खी, चोमासी और सवत्सरी सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

अष्टम व्रत

कोक शास्त्र तू ही पढे, काम कथा तू करतो रे ।
कदप जागे जिण बात सू नि शमा होय फिरतो रे ॥९७॥
तीव्राभिलाषा भाग भोगव्या, ग्रायुध हाथ वंधाया रे ।
रेकारा तूकारा देवतो, ग्रनर्थादण्ड कमाया रे ॥९८॥
चवदे ठिकाणारा जीवकी, ओलखाण नही पाई रे ।

जाण पणा बिन यो ही खाया, मानव भव को ठाणो रे ॥१२०॥
सामायिक पोषा मायने, नेणा नेण जो साध्या रे ।
नाम लेइ वखाण को, चिकणा कम जो बाध्या रे ॥१२१॥
निज हाथे दान देइ ने साधु सुपात्र न पोष्या रे ।
टग-मग सामो जावता, भक्ति सु न सतोष्या रे ॥१२२॥
भरिया घर मे जनमियो, श्रमणापासक कहायो रे ।
खाली हाथे जावसी, यो अवसर जो गमायो रे ॥१२३॥
दान देता देखो ओर ने, मन मलिनता धारी रे ।
परभव मे इण पाप से, हो दरिद्री अवतारी रे ॥१२४॥

ऐमे चार शिक्षा व्रत मे देवसी, पक्खी, चौमासी, सवत्सरी सम्ब धी जो कोई दाप अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

पच्चीस क्रिया

क्रिया पच्चीस लगावतो, भेद कहूँ न्यारा न्यारा रे ।
सदगुरु क प्रसाद से, आगम के अनुसारा रे ॥१२५॥
काया क्रिया लागे अग मे, अधिकरण मे खड्ग दडो रे ।
तापना ऊपर सव तपे पाऊसिया क्रोध प्रचडा रे ॥१२६॥
पाचमी जीव घात की, छट्ठी [illegible] काय आरम्भो रे ।
परिग्रह धन भेला करे, आठमी कपट प्रसगो रे ॥१२७॥
मिथ्यात्व उलटा सरदहे, दसमी नही पच्चखाणो रे ।
दिट्ठी मे स्त्री पुरुष देख ले, पुट्ठी आश्रव सुजानो रे ॥१२८॥
पाडुचिया खोटी चिन्तवे, चवदमी सामन्त कहावे रे ।
सहत्थिया शस्त्र थकी, लाठी लोढी से कम उपावे रे ॥१२६॥

प्राणवणिया गाली देवे, विदारे फल ने पानो रे।
प्रण प्रयोगी क्रिया लागती, इस लाक विरुद्ध जाणा रे ॥१३०॥
मन वचन काया जोग से, लागे कम यो जाणी रे।
नाटक जोता चार मारता, कम वधे समुदाणी रे ॥१३१॥
पेज क्रिया लागे स्नेह थी, वैरी देख उपजे द्वेषो रे।
इरियावही केवली सगे, कारण कम पच्चीसो रे ॥१३२॥

ऐसी पच्चीस क्रियाओं के योग से, जो पाप दोष सचित हुए होवे तो त्रिविध त्रिविध कर अनंत केवली गुरुदेव और आत्मा की साक्षी से वोसिरामि! वोसिरामि!! वोसिरामि!!!

### स्त्री-कृत्य आलोयणा

कुलटा नारी होय ने, पर पुरुष सेवन कीधा रे।
नारी-पुरुष सयोग मेलव्या, गर्भ गाली दीधा रे ॥१३३॥
नीबू केरी चीर ने, भरिया माही मसाला रे।
गड गूबड हुआ थका, ऊपर बाध्या पाला रे ॥१३४॥
गाली गीत गाया घणा, नाटक बहुत नचाया रे।
नित्य शृगार बणावती, ताजा माल कर खाया रे ॥१३५॥
पीठी ने उवटण किया, जुल्फा पड्या सवार्या रे।
आरीसा मे देखने, मुख पर हाथ फेराया रे॥
ऐनक तिलक नथ चादला, कर प्रीतम ने रिंजाया रे।
हास्य विनोद विलास से, विषय फास रचाया रे॥१३७॥
सासु-स्वसुर देवर जठ ने, सुख रत्ती नही दीधा रे।
भाई भोजाई माय ने, जुदा-जुदा घर कीधा रे ॥१३८॥
घर मे बडेरी होय ने, व्याह सगाई करिया रे।

बटा वेटी परणाय ने, उपदेश सोवण का दिया रे ।।१३९।।
बींद बीदणी माय ने, देखिया नजर विकारो रे ।
व्रत भग होवे सहा, उँडी दृष्टि विचारो रे ।।१४०।।
केईक डूबी देखने, केईक मनसा पापो रे ।
केई काया से डूबिया, ऐसा समझो ग्रापो रे ।।१४१।।
किसबण का भव मे किया, भोगी पुरुष रिझाया रे ।
काम कुचेष्टा करी घणी, दाम दे गुज दिखाया रे ।।१४२।।
क्षण क्षण मे क्रोध कियो, धन देखी किया अभिमानो रे ।
कपट कियो भरतार से, गेणा को लाभ असमानो रे ।।१४३।।
ग्राप शोभा परनिंदा करी, करिया पाप अठारो रे ।
घर धन्धो कियो घणो, किम हासी भव पारो रे ।।१४४।।
समझणी बाई वाजती, साले श्रृंगार बनाया रे ।
झीणी चाल ज्यो चालती, पर पुरुषां ने रिझाया रे ।।१४५।।
डोरा डडा करे घणा, टामण टूमण करती रे ।
निज घर पैर टिके नही, पर घर नित की फिरती रे ।।१४६।।
साधु साध्वी माँय ने, घणो बधायो द्वेषो रे ।
मन मे तूं राजी हुई, आगे कोई देशी लेखो रे ।।१४७।।
व्यापार करे बाजार मे, ऊगाडो राख माथो रे ।
घर कारज छोडी करी, घणी करे या वातो रे ।।१४८।।
रस्ता माहे बैठी रहे, लाज नही नही नाता रे ।
पुरुषा मे बैठी रहे, जावे आधी राता रे ।।१४९।।
सतियाँ का नही काम ये, हृदय समझा वायाँ रे ।
कोई पुरुष जा देखसी, देसी कलक लगाया रे ।।१५०।।

इतनी सिखामण मानसी, तब सुधरेला काजो रे ।
साधु गरजी कहण का, मान्या सु सुख होसी साजो रे ॥१५१॥

पुरुष कृत्य आलोयणा

धोबी तेली तम्बाली थयो, शुद्र वणिक ने राजो रे ।
ब्राह्मण होय यज्ञ किया, धीवर पारधी ग्रखाजो रे ॥१५२॥
रगारा भव मायने, ग्रनेक भट्टिया चढाई रे ।
घाची मोची खटिक भवे, लुटाया प्राण हर्षाई रे ॥१५३॥
श्रावक नाम धराय ने व्रत बारह नही लीना रे ।
नियम चवदा नही चितारिया, रात्रि भाजन कीना रे ॥१५४॥
प्रश्न कपट से पूछने, ठट्टा मश्करी करतो रे ।
भोला साधु ने देखने, मुखें पल्लो दई हसतो रे ॥१५५॥
छल-छिद्र देखे घणा, घणी कपट की फांसी रे ।
ग्रणहोती बाता स्थापने, सीधो दुर्गति जासी रे ॥१५६॥
निंदा कीधी साधु की, ग्रठी-वठी ने लगाया रे ।
निज तत्त्व जाण्यो नही साधाने खूब लडाया रे ॥१५७॥
साधु ग्रज्ञानी जा होव, श्रावक मे मिल जावे रे ।
श्रावक पक्ष बधे घणो, दोनो की निंदा होवे रे ॥१५८॥

ऐसे ग्रज्ञान वश, श्रावक श्राविका के पद मे स्त्री-पुरुष मिश्रित दुष्कृत्य मन, वचन, काया से, सेवन किये हो ग्रथवा दोष ग्रतिचार लगा हा तो देवसी, पक्खी, चोमासी और सवत्सरी सम्बन्धी जो दाप ग्रतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

साधु की आलायणा

साधु नाम धरायने, हिंसा मे धर्म बताया रे ।

माया कपट किया घणा, धूर्त पणे पुजाया रे ।१५५।।
पर की प्रशसा देखने, घम मे द्वेष कराया रे ।
छता अछता ओगुण बोलिया, निंदा वहुत कराया रे ।।१६०।।
यत्र मत्र तत्र किया, काल दुकाल बताया रे ।
गृहस्थ की चिन्ता करी, साधु घम गमाया रे ।।१६१।।
ममत्व नजी नही कुटुम्ब की, घणा परिचय राखे रे ।
मोह कम मे लिपटिया, वे शिव सुख किम चाखे रे ।।१६२।।
अणजाणी वस्तु लिवी, मेटी सूत्र की आणा रे ।
राजा गुरु और गृहस्थ का, अदत्त दाप लगाया रे ।।१६३ ।
चौथा व्रत के मायने, बाई अकेली से बातो रे ।
मन वचन से डिग गयो, पकड तहनो हाथो रे ।।१६४।।
बाया से प्रीत राखे घणी, आरजा से घणो परचो रे ।
काम स्नेह अरु दृष्टि का, राग रग मु राच्यो रे ।।१६५।।
पाथो पाना गट्ठा घणा, गृहस्थ के घर धरतो रे ।
नाम घाली ने मायने, ममता अधिक करतो रे ।।१६६।।
सामान भर ताला दिया, निग्रन्थ नाम धराया रे ।
कपट क्रिया घणी केलवे, (फेर) मुक्ति आवणने उमाया रे।।१६७।
समकित दूजा साधा तणो, थें तो दूर कराई रे ।
श्रावक श्राविका माहरा, ममता अधिक वधाई रे ।।१६८।।
सम्बन्ध करावे ससार का, भकना को मन मोवे रे ।
सट्टो पट्टो देण लेण को सयम धन यो खोवे रे ।।१६९।।
चारित्र शुद्ध पाल्यो नही, शरीर का सुख चायो रे ।
समकित शुद्ध न पालिया, तामें दोष लगाया रे ।।१७०।।

अनाचार वावन सेविया, आहार असूझतो लीधो रे।
उपकरण अधिक राखिया, पडिलेहण नही कीधो रे ॥१७१॥
क्रिया पच्चीस लगावतो, ब्रह्मचर्य शुद्ध नाही रे।
यति धर्म दस प्रकार को, लगाया दोष तिण माही रे ॥१७२॥
बावीस परिषह ऊपना, स्थिरता ना धरी काई रे।
सत्तावन सामाचारी कही, दोष लगाया भाई रे ॥१७३॥
नव कल्प साधु तणा, बारह सभोग विचारो रे।
बारह भावना भाई नही, किम होमी भव पारा रे ॥१७४॥
चरण करण न आराधिया वयालीस दोष नही टाल्या रे।
जोग सग्रह बत्तीस मे, मन उछरगे चाल्या रे ॥१७५॥
दोष सबल एकवीस है, ते तो थे नित्य सेव्या रे।
टाली नही गुरु आशातना, असमाधि दोष सेव्या रे ॥१७६॥
ईर्या समिती देखी नही, भाषा बोले आल पालो रे।
मन वचन जीत्या नही, काया को दोष न टाल्या रे ॥१७७॥
दान देता मना किया, शील व्रत भगाया रे।
तपस्या कदी करी नही, भाव अशुद्ध हिये लाया रे ॥१७८॥
इतनी बाता छोडमी, तब सुधरमी काजो रे।
शुद्ध करणी प्ररूपणा, करो मुक्ति को साजो रे ॥१७९॥
और जजाल छोडी करी, भावना बारे भावो रे।
उज्ज्वल मन तुम राखजो, अमरापुर मे जावो रे ॥१८०॥

इत्यादिक मुनि क्रिया के विषय देवसी, पक्खी चौमासी, सवत्सरी सम्बन्धी जो कोई दोष अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड।

द्वादश भावना

अनित्य भावना नित्य नही, काल आया नही शरणो रे ।
चारो गति छ काय मे, अनत काल हुयो फिरणो रे ॥१८१॥
एकत्व एकलो आवियो, शरीर कम से भिन्नो रे ।
शरीर औदारिक अपावनो, सव जीव को चिन्नो रे ॥१८२॥
आश्रव, सवर, निजरा, लोक मे, वहुविध भटक्यो रे ।
समकित शुद्ध न आराधियो, धम विना यो अटक्यो रे ॥१८३॥
ऐसी आलायणा प्ररूपणा, नित्य नित्य करजो भावे रे ।
शुद्ध माग प्ररूपणा, उत्तम ने सुहावे रे ॥१८४॥
सम्वत् उगणीसे छत्तीस का, धूलिया शहर मझारो रे ।
कृष्ण गुरु प्रसाद से, प्रेमराज मगलाचारो रे ॥१८५॥
आत्म दाप अनक छे, अहो ! प्रभु आप स्वीकारो रे ।
अवगुणी पर गुण करो, श्री जिन मुझ ने तारो रे ॥१८६॥

ऐसे शुद्ध भावो से आत्मकृत दाप-पापो की आलोचना करगे, करायेग, वे जिनेन्द्र महाप्रभु की आज्ञा के आराधक हो, उभय लोक मे सुख शान्ति का अनुभव करेगे। मोह कम के बधन का ताड कवलज्ञान प्राप्त करके, वे यशस्वी मोक्षगामी आत्माएँ अचल, अविनाशी, नित्य, शाश्वत निराबाध सुखो मे लीन बनेगी।

ॐ शाति ! शाति !! शाति !!!



# मृत्यु महोत्सव



सद्धर्मपथ्यपाथेय, यस्त्वादाय प्रतीक्षते ।
मरण तस्य तत्प्राप्तौ, न भी किंतु महोत्सव ॥१॥

धर्मरूपी धन से धनवान् बना हुआ आत्मा, धर्म की उत्तम आराधना पूवक, परलोक के लिए उत्तम पाथेय (भाता) लेकर जो मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है, उसे मृत्यु से कुछ भी भय नही है। उसके लिए मृत्यु महोत्सव रूप है।

ज्ञानदर्शनचारित्र-तपोरूपाघनाशिनी ।
आराधना चतुस्कधा, यस्य स्यात्तस्य किं मृतम् ॥२॥

—जिस भव्यात्मा ने पाप को नष्ट करनेवाली और ज्ञान, दशन, चारित्र और तपरूप चार स्तभो वाली, ऐसी शुभ आराधना की है, उसके लिए मृत्यु क्या चीज है ? वास्तव म वह जीवित एव अमर है।

आनन्दोत्पादका स्तेऽत्र, भगवन्तो मुनीश्वरा ।
ये क्षालयित्वा पापौघ, मृता, पडितमृत्युना ॥३॥

—जो मुनीश्वर भगवत, पाप समूह का नष्ट करके पडित मरण को प्राप्त हुए हैं, वे वास्तव मे आनन्दप्रद हैं। उन महात्माओ का पडितमरण, महोत्सव रूप है।

# अंतिम साधना



पडित-मरण को स्वीकार करनेवाली भव्यात्मा,अहन्त भगवान् और गुरु साक्षी से अपने दुष्कृत्यो का प्रतिक्रमण करती हुई पापो को आत्मा से पृथक् करती है। वह उल्लास पूवक कहती है कि, –

**इच्छामि भते ! उत्तमटठ पडिक्कमामि अईय पडिक्कमामि अणागय पडिक्कमामि पच्चुप्पन्न पडिक्कमामि, कय पडिक्कमामि, कारिय पडिक्कमामि अणुमोइय पडिक्कमामि मिच्छत्त पडिक्कमामि असजम पडिक्कमामि कसाय पडिक्कमामि पावप्पओग पडिक्कमामि।**

हे *भगवन ! उत्तम* *अथ (आत्म पावित्र्य)* के लिए मैं पूव के किये हुए सभी पापो से पृथक् होता हूँ। भूतकाल मे मुझ से बने हुए पापो की निन्दा द्वारा प्रतिक्रमण करता हूँ, प्रत्याख्यान करके भविष्य के पापो से निवृत्त होता हू और सवर युक्त होकर वत्तमान काल के पापो से पीछे हटता हूँ।

मैंने अपने जीवन मे जो जो पाप स्वय किये, दूसरो से करवाये और पाप कृत्यो की अनुमोदना की, उन सब से पृथक् होता हूँ। मैं मिथ्यात्व से पीछे हटता हूँ, असयम से प्रतिक्रमण करता हूँ, कषाय से पृथक् होता हूँ और सभी प्रकार के पापमय प्रयोग से पृथक् होता हूँ।

**मिच्छादसणपरिणामेसु वा इहलोगेसु वा परलोगेसु वा सच्चित्तेसु वा अच्चित्तेसु वा पचमु इदियत्थेसु वा।**

मैंने मिथ्यादर्शन के परिणाम से इहलोक और परलोक के विषय में, सचित्त अचित्त पदार्थों के विषय में और पांच इन्द्रियों के शब्दादि विषयों के विषय में, किसी भी निमित्त से, सुप्तावस्था में या जाग्रत अवस्था में, किसी भी प्रकार के दुष्कृत्य का चिन्तन किया हो, तो मैं उस अधम कृत्य का प्रतिक्रमण करता हूं। मेरे वे सभी दुष्कृत मिथ्या होवें।

**अन्नाणझाणे अणायारझाणे, कुदंसणझाणे कोहझाणे माणझाणे मायझाणे लोभझाणे रागझाणे दोसझाणे मोहझाणे इच्छझाणे मिच्छझाणे मुच्छझाणे, सकझाणे कखझाणे गेहिझाणे आसझाणे तण्हझाणे छुहझाणे पथझाणे पथाणझाणे निद्दझाणे नियाणझाणे नेहझाणे कामझाणे कलुसझाणे कलहझाणे जुज्झझाणे निजुज्झझाणे, सगझाणे सगहझाणे ववहारझाणे कयविक्कयझाणे अणत्थदडझाणे आभोगझाणे अणाभोगझाणे अणाइल्लझाणे वेरझाणे वियक्कझाणे हिंसझाणे हासझाणे पहासझाणे पओसझाणे फरुसझाणे भयझाणे रुवझाणे अप्पपससझाणे परनिंदझाणे परगरिहझाणे परिग्गहझाणे परपरिवायझाणे परदूमणझाणे आरंभझाणे सरंभझाणे पावाणुमोयणझाणे अहिगरणझाणे असमाहिमरणझाणे, कम्मोदयपच्चयंझाणे इड्ढिगारवझाणे रसगारवझाणे सायागारवझाणे अवेरमणझाणे अमुत्तिमरणझाणे पसुत्तस्स वा पडिवुद्धस्स वा**

**जो मे कोई देवसिओ राइओ उत्तमट्ठे अइक्कमो वइक्कमो अईयारो अणायारो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।**

ज्ञान पर उपेक्षा-अरुचि एव विपरीत भाव होकर अज्ञान मे रुचि की हो, अज्ञान मे लीन हुआ होऊँ, अनाचार मे आसक्त बना हाऊँ, कुदर्शन मे रुचि रखी, क्रोध मे रत, मान मे मत्त, माया मे लीन और लोभ मे गृद्ध बना हूँ, राग मे मस्त, द्वेष मे जलन तथा-मोह, इच्छा, मिथ्या, मूर्च्छा, शका, काक्षा, आदि के विकल्पो मे तल्लीनता रखी हो, घर कुटुम्ब आदि मे, आशा, तृपा, क्षुधा, मार्ग के कष्ट, कठिन मार्ग के कष्ट आदि का चिन्तन किया, निद्रा मे अशुभ चिंतन किया, निदान किया, स्नेह, कामाभिलाप कलुपितता पूर्ण विचारो मे, कलह, युद्ध, महायुद्ध, स्त्रीसग, सग्रह, लोकव्यवहार, क्रयविक्रय एव अनर्थ दड विपयक मनोरथ किये हो। अशुभ उपयोग मे अथवा अनाभोग से कुविकल्प किये हो, कर्जदारी दशा मे, वैरभाव मे, वितर्क कुतर्क चिन्तन मे, हिंसक विचारो मे, हास्य विकल्प मे, अहास्य-विशप रूप की हँसी के परिणाम मे, रोपपूर्ण विचारो मे, कठोरता पूर्ण हृदय स,भयसज्ञा मे, सुन्दर रूप पर मोहित होकर स्वात्म प्रशसा के भावो मे मगन होकर, दूसरो की निन्दा के विचारो मे, दूसरो की गर्हा के चिंतन में, परिग्रह सज्ञा में, दूसरो की बुराई करने के विचारो मे, दूसरो के दूपणो के चिंतन मे, आरम्भयुक्त मन से, सरभ युक्त विकल्प म, पाप की अनुमोदना के चिन्तन मे, शस्त्र सग्रहादि विचारमे, असमाधि मरण-बाल मरण के विचारो में, उग्र पाप कर्म के उदय से, अप्रशस्त चिन्ता द्वारा, ऋद्धि के गर्व युक्त मानस

से, रस और सुख सामग्री के गर्व से उन्मत्त हृदय हुआ हूँ, अविरति मे रति लाया हू और काम भोग की लालसा युक्त मरण का अभिलाषी हुआ हूँ। इस प्रकार उपरोक्त ६३ प्रकार के अशुभ ध्यान–पापमय भावो मे लीन बने हुए मैंने सोते हुए, या जागते हुए, दिन में अथवा रात्रि मे, उत्तम अर्थ में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार या अनाचार रूप दुष्कृत्य का आचरण किया हो, तो मेरा समस्त पाप मिथ्या (निष्फल) हो जाओ।

एस करेमि पणाम, जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स।
सेसाण च जिणाण, सगणहराण च सव्वेंसि ॥१॥

–सामान्य केवलज्ञानियो मे वृषभ के समान जिनेश्वर श्री वद्धमान स्वामी को तथा सामान्य केवलज्ञानी और गणधर महाराज, इन सब को नमस्कार करता हुआ मैं सागारी अनशन करता हूँ।

सव्व पाणारभ पच्चक्खामित्ति अलियवयण च।
सव्वमदिन्नादाण, मेहुण्णपरिग्गह चेव ॥२॥

–सभी प्रकार की जीव हिंसा, झूठ, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह का मैं सवथा त्याग करता हूँ।

सम्म मे सव्वभूएसु, वेर मज्झ न केणई।
आसाओ ओसिरित्ताण समाहिमणुपालए ॥३॥

–सभी जीवो के प्रति मेरा समभाव (मैत्री भाव) है। किसी के प्रति मुझे वैर नही है। मैं कुटुम्ब, परिवार, धन, सम्पत्ति आदि तथा शरीर सम्बन्धी सभी प्रकार की आशा अभिलाषा और

इच्छा का सवथा प्रकार से त्याग करके समाधिभाव को स्वीकार करता हूँ ।

सव्व चाहारविहिं सन्नाओ गारवे कसाए च ।
सव्व चेव ममत्त चएमि सव्व खमावेमि ॥४॥

—अशनादि आहार और आहारादि सज्ञा, तीन प्रकार के गारव (गव) चार कपाय और सभी प्रकार के ममत्व का सवथा त्याग करके मैं समस्त जीवो से क्षमा चाहता हूँ ।

हुज्जा इममि समए उवक्कमो जीवियस्स जइ मज्झ ।
एय पच्चक्खाण विउला आराहणा होउमे ॥५॥

—वर्तमान मे जीवो का आयुष्य सोपक्रम है, न जाने किस समय और किस निमित्त से आयुष्य का क्षय हो जाय ? कदाचित इस समय मेरा जीवन समाप्त हो जाय, तो मुझे समस्त पापो और समस्त अविरति तथा कपाय भावादि का त्याग होवो और मुझ ज्ञान, दशन और चारित्र रूप रत्नत्रयी की विपुल आराधना होओ ।

सव्वदुक्खपहीणाण, सिद्धाण अरहो नमो ।
सद्दहे जिणपन्नत्त, पच्चक्खामि य पावग ॥६॥

—जन्म मरण, कर्म, कपायरूप समस्त दुखो को सवथा नष्ट करनेवाले सिद्ध भगवतो को और अरिहत देवो का मैं नमस्कार करता हूँ । मैं जिनेश्वर प्रणीत धम की श्रद्धा करता हू और समस्त पापो का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

नमुत्यु धुयपावाण, सिद्धाण च महेसिणं ।
सथार पडिवज्जामि, जहा केवलिदेसिय ॥७॥

–पाप कर्मों को सदा के लिए एव सर्वथा नष्ट करनेवाले सिद्ध भगवान् तथा महर्षिगण को नमस्कार करके मैं केवलज्ञानी भगवान द्वारा उपदिष्ट सथारे को स्वीकार करता हूँ।

**ज किंचिवि दुच्चरिय, त सव्व वोसिरामि तिविहेण।**
**सामाइय च तिविह, करेमि सव्व निरागार ॥८॥**

–मैंने इस भव मे या परभव मे जो कुछ भी दुराचरण किया हो, उस सब का मन, वचन और काया के त्रियोग से मैं त्याग करता हूँ और सम्यक्त्व, श्रुत और सव विरति–ऐसे तीन प्रकार के सामायिक का बिना किसी आगार के स्वीकार करता हूँ।

**वज्झ अब्भिंतर उवहिं, सरीराइ सभोयण।**
**मणसा वयकाएहिं, सव्वभावेण वोसिरे ॥६॥**

–बाह्य और आभ्यतर उपधि, तथा भोजनादि सहित शरीरादि को मैं मन, वचन और काया के समस्त भाव से वोसिराता (त्यागता) हूँ।

**सव्व पाणारभ पच्चक्खामित्ति अलियवयण च।**
**सव्वमदिन्नादाण मेहुणपरिग्गह चेव ॥१०॥**

मैं पुन सभी प्रकार के प्राणारम्भ (हिंसा) झूठ, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह का त्याग करता हूँ।

**सम्म मे सव्वभूएसु वेर मज्झ न केणई।**
**आसाउ ओसरित्ताण समाहिमणुपालए ॥११॥**

–सभी जीवो के प्रति मेरा मित्रभाव है किसी के प्रति भी

मेरे वैरभाव नहीं है। मैं सभी प्रकार की आशा, अभिलाषा का त्याग करता हुआ समाधिभाव का पालन करता हूँ।

राग बंध पओस च, हरिस दीणभावय।
उस्सुगत्त भय सोग, रइ अरइ च वोसिरे॥१२॥

—राग, द्वेष, हर्ष, दीनता, उत्सुकता, भय, शोक, रति, अरति, कर्म बन्ध के इन सभी निमित्तों को मैं वोसिराता (छोड़ता) हूँ।

ममत्त परिवज्जामि, निम्ममत्त उवट्ठिओ।
आलंबण च मे आया, अवसेस च वोसिरे॥१३॥

ममत्व का त्याग करता हुआ मैं निर्ममत्व भाव में सावधान होता हूँ। ममत्व बन्धनों से मुक्त होने वाले ऐसे मेरे आत्मा का ही अवलम्बन करके शेष सभी सम्बन्धों को छोड़ता हूँ।

आया हु मह नाणे, आया मे दसणे चरित्ते य।
आया पच्चक्खाणे, आया मे सजमे जोगे॥१४॥

—मेरा आत्मा स्वय ज्ञान रूप है, आत्मा ही दर्शनरूप है, आत्मा ही चारित्र रूप है, आत्मा स्वय प्रत्याख्यान रूप है और आत्मा स्वय सयम योग से युक्त है। अर्थात् मेरा आत्मा ही सब कुछ है। मेरा आत्मा अपने आप समर्थ अवलबन है। मुझे अन्य अवलबन की आवश्यकता ही क्या है?—कुछ भी नहीं।

एगो वच्चइ जीवो, एगो चेवुववज्जई।
एगस्स चेव मरण, एगो सिज्झइ नीरओ॥१५॥

—आत्मा अकेला जाता है, अकेला जन्म लेता है, अकेला ही मरता है और मुक्त भी अकेला ही होता है।

एगो मे सासओ अप्पा, नाणदसणसजुओ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे सजोगलक्खणा।१६।

-ज्ञान और दशन गुणवाला मेरा आत्मा शाश्वत है। इसके सिवाय अन्य सभी बाह्य पदार्थ सयोग जन्य है और विनश्वर हैं।

सजोगमूला जीवेण, पत्ता दुक्खपरपरा।
तम्हा सजोगसबध, सव्वभावेण वोसिरे॥१७॥

-दुख परम्परा का मूल कारण ही सयोग है। पौद्गलिक सयोग के कारण ही आत्मा अनादि से दुख भोग रहा है। अब मैं इस सयोग सम्बन्ध का सवथा त्याग करता हूँ।

(आउरपच्चक्खाण पइण्णा मे स)

# आत्म समर्पण



ज्ञानदर्शनचारित्र-वीर्याराधनतत्पर।
एक एवाऽन्तरात्मा मे, व्युत्सृष्टमधुनाऽपरम्॥१॥

-श्री जिनेश्वर कथित ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य की आराधना मे तत्पर ऐसा मेरा अन्तरात्मा एक-अकेला ही है। इसके सिवाय अन्य सभी का मैंने त्याग कर दिया है।

रागद्वेषमहामोह-कषायमलधूनक ।
विशुद्ध साम्प्रत वर्ते, स्नातकोऽह समाहित ॥२॥

–राग द्वेष, महामोह एव कषायरूप मल को धोकर मैं निमल बना हूँ, अतएव इस समय मैं स्नातक * हो गया हूँ।

क्षाम्यन्तु सर्वसत्त्वा मे, क्षान्ति में सर्वजन्तुषु ।
निर्वैर साम्प्रत शान्त, क्षेत्रज्ञो मम वर्तते ॥३॥

–समस्त जीव मुझे क्षमा प्रदान करे। मैं सभी जीवो से क्षमा चाहता हूँ। इस समय मेरा आत्मा शान्त है। मुझे किसी के साथ वैर विरोध नही है।

यदन्तर्यामिन किंचिद, बहिर्भूत पुरा मया ।
गृहीत स्वीयबुद्धया तद्–व्युत्सृष्टमधुनाऽखिलम् ।४।

–जो वस्तुएँ चैतन्य स्वरूप ऐसे मेरे आत्मा से कभी भी सम्बन्ध नही रख सकती, ऐसी पर वस्तुओ को मैं अब तक अपनी मान रहा था, उन सभी पौद्गलिक–पर वस्तुओ को मैं वोसिराता हूँ।

तीर्थेश्वरा महात्मान, सिद्धा निर्धूतकल्मषा ।
सद्धर्म साधवश्चेति, भवन्तु मम मगलम् ॥५॥

तीर्थेश्वर–तीर्थनाथ महात्मा, पाप मल से सर्वथा रहित

---

* स्नातक का अर्थ 'केवलज्ञानी' होता है। यहाँ यह अर्थ नहीं लेना। जिस प्रकार स्नान करके मनुष्य पवित्र होता है, उसी प्रकार अन्तःकरण से पापरूपी मल को धोकर पवित्र बनी हुई आत्मा भी स्नातक कहलाती है। उसके भावों में से पाप हट चुका है।

सिद्ध भगवतो, साधु साध्वियों तथा जिनेश्वर प्रणीत धम मेरे लिए मगल रूप बनो।

एतावानेवोत्तमत्वेन, गृह्णामि भुवनेऽप्यहम्।
एतानेव प्रपद्येऽहं, शरण भव भीरुक ॥६॥

ये चार वस्तुएँ ही विश्व मे श्रेष्ठतम हैं और ये चार तत्त्व ही शरण के स्थान है। मैं भवभ्रमण से भयभीत बना हुआ, इन चारो का शरण स्वीकार करता हूँ।

निर्वृत्तसर्वकामोऽहं, मनोजालनिरोधक ।
बन्धु समस्तभूताना, सूनुवत्सर्वयोषिताम् ॥७॥

–मैं सभी प्रकार की कामना, अभिलाषा एव लालसा से निवृत्त हो गया हूँ। मैंने मन से दुष्ट विकल्पो को सर्वथा रोक दिये हैं। लाक के समस्त जीवो को मैं अपने बन्धु मानता हूँ और सभी स्त्रियाँ मेरी माता के समान हैं, मैं उनका पुत्र हूँ।

स्थित सामायिके शुद्धे, सर्वयोगनिरोधिनी।
व्युत्सृष्टचेष्ट मा सिद्धा', पश्यन्तु परमेष्ठिन ॥८॥

–सभी प्रकार के योगो का निरोध करनेवाली ऐसी शुद्ध सामायिक मे मैं स्थिर हुआ हूँ। सभी प्रकार की चेष्टाओ को छोड देनेवाली ऐसी मेरी आत्मा को हे सिद्ध भगवन्! आप कृपा दृष्टि से देखें।

यच्च दुश्चरित किंचिदिहान्यत्र च मे भवेत्।
सजात जातसवेग-स्तन्निन्दामि पुन पुन ॥९॥

–मने इस भव मे, या परभव मे, दुष्कृत्य का किञ्चित् भी

रागद्वेषमहामोह-कषायमलधूनक ।
विशुद्ध साप्रत वर्ते, स्नातकोऽह समाहित ॥२॥

–राग द्वेष, महामोह एव कषायरूप मल को धोकर मैं निमल बना हूं, अतएव इस समय मैं स्नातक * हो गया हूँ।

क्षाम्यन्तु सर्वसत्त्वा मे, क्षान्ति में सर्वजन्तुषु ।
निर्वैर साप्रत शान्त , क्षेत्रज्ञो मम वर्तते ॥३॥

–समस्त जीव मुझे क्षमा प्रदान करे । मैं सभी जीवो से क्षमा चाहता हूँ । इस समय मेरा आत्मा शान्त है । मुझे किसी के साथ वैर विरोध नही है ।

यदन्तर्यामिन किंचिद्, बहिर्भूत पुरा मया ।
गृहीत स्वीयबुद्धया तद्-व्युत्सृष्टमधुनाऽखिलम् ।४।

–जो वस्तुएं चैतन्य स्वरूप ऐसे मेरे आत्मा से कभी भी सम्बन्ध नही रख सकती, ऐसी पर वस्तुओ को मैं अब तक अपनी मान रहा था उन सभी पौद्गलिक-पर वस्तुओ को मैं वोसिराता हूं ।

तीर्थेश्वरा महात्मान , सिद्धा निर्धूतकल्मषा ।
सद्धर्म साधवश्चेति, भवन्तु मम मगलम् ॥५॥

तीर्थेश्वर–तीर्थनाथ महात्मा, पाप मल से सर्वथा रहित

---

* स्नातक का अर्थ 'केवलज्ञानी' होता है। यहां यह अर्थ नहीं लेना। जिस प्रकार स्नान करके मनुष्य पवित्र होता है, उसी प्रकार अन्त करण से पापरूपी मल को धोकर पवित्र बनी हुई आत्मा भी स्नातक कहलाती है। उसके भावों में से पाप छूट चुका है।

सिद्ध भगवतो, साधु साध्वियों तथा जिनेश्वर प्रणीत धम मेरे लिए मगल रूप वनो।

एतावानेवोत्तमत्वेन, गृह्णामि भुवनेऽप्यहम्।
एतानेव प्रपद्येऽह, शरण भव भीरुक ॥६॥

ये चार वस्तुएँ ही विश्व मे श्रेष्ठतम हैं और ये चार तत्त्व ही शरण के स्थान है। मैं भवभ्रमण से भयभीत वना हुआ, इन चारा का शरण स्वीकार करता हूँ।

निर्वृत्तसर्वकामोऽह, मनोजालनिरोधक।
वन्धु समस्तभूताना, सूनुवत्सवयोषिताम् ॥७॥

–मैं सभी प्रकार की कामना, अभिलाषा एव लालसा से निवृत्त हो गया हूँ। मैंने मन से दुष्ट विकल्पो को सवथा रोक दिये हैं। लाक के समस्त जोवो को मैं अपने वन्धु मानता हूँ और सभी स्त्रियाँ मेरी माता के समान हैं, मैं उनका पुत्र हूँ।

स्थित सामायिके शुद्धे, सर्वयोगनिरोधिनी।
व्युत्सृष्टचेष्ट मा सिद्धा', पश्यन्तु परमेष्ठिन ॥८॥

–सभी प्रकार के योगो का निरोध करनेवाली ऐसी शुद्ध सामायिक मे मैं स्थिर हुआ हूँ। सभी प्रकार की चेष्टाओ को छोड देनेवाली ऐसी मेरी आत्मा को हे सिद्ध भगवन्! आप कृपा दृष्टि से देखें।

यच्च दुश्चरित किंचिदिहान्यत्र च मे भवेत्।
सजात जातसवेग-स्तन्निन्दामि पुन पुन ॥६॥

–मने इस भव मे, या परभव मे, दुष्कृत्य का किञ्चित् भी

यो क्लेश हिये धार मरण कर, चारो गति भरमायो ।
सम्यग दर्शन ज्ञान चरण ये, हृदय मे नही लायो ॥१२॥
अब या अरज करू प्रभु सुनियें, मरण समय ये मागू ।
रोग जनित पीडा नही हावे, अरु कषाय मत जागो ॥१३॥
ये मुझ मरण समय दु ख दाता, इन हर साता कीजे ।
जो समाधियुक्त मरण होय मुझ, अरु मिथ्या मद छीज ॥१४॥
यह तन सात कुधातु मइ है, देखत ही घिन आवे ।
चम लपेटी ऊपर सोहे, भीतर विष्टा पाले ॥१५॥
अति दुर्गन्ध अपावन सो यह, मूरख प्रीति वढावे ।
देह विनाशी जीय अविनाशी, नित्य स्वरूप कहावे ॥१६॥
यह तन जीण कुटी सम आतम, याते प्रीति न कीजे ।
नूतन महल मिले जब भाई, तब यामें क्यो छीजे ॥१७॥
मृत्यु हाने से हानि कौन है याका भय मत लावो ।
समता से जो देह तजोगे, ता शुभ तन तुम पावो ॥१८॥
मृत्यु मित्र उपकारी तेरा, इस अवसर के माही ।
जीरण तन ले देत नयो यह, या सम काहू नाही ॥१९॥
या सेती इस मत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजे ।
क्लेश भाव का त्याग सयाने, समता भाव धरीजे ॥२०॥
जा तुम पूरब पुण्य किय हैं, तिनका फल सुखदाई ।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावें, स्वग सम्पदा भाई ॥२१॥
राग रोप को त्याग सयाने, सात व्यसन दु खदाई ।
अत समय मे समता धारो, पर भव पथ सहाई ॥२२॥
कम महादुष्ट बैरी मेरो, या सेती दु ख पावे ।

तन पिंजर में बंध कियो, या सो कौन छुडावे ॥२३॥
भूख तृष्णा आदि दु ख अनेक, इस ही तन मे गाढं ।
मृत्युराज अब दया कर, तन पीजर से काढं ॥२४॥
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये ।
गंध सुगंधित लगाये, षटरस अशन कराये ॥२५॥
एता दिनो मैं दास होयकर, सेव करी तन केरी ।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ॥२६॥
मृत्युराय को शरण पायकर, तन नूतन ऐसो पाऊ ।
जामैं सम्यक् रतन तीन लही, आठो कर्म खपाऊ ॥२७॥
देखो तन सम और कृतघ्नी नही सुण्या जग माही ।
मृत्यु समय मे ये ही परिजन, सब ही है दु खदाई ॥२८॥
यह सब मोह बढावन हारे, जिय को दुगति दाता ।
इनसे ममत निवारो जियरो, जो चाहो सुख शाता ॥२९॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, मागो इच्छा जती ।
समताधर कर मृत्यु करो तो, पावा सपत्ति तेती ॥३०॥
यो आराधन सहित प्राण तज, तो या पदवी पाव ।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वग मुक्ति मे जावे ॥३१॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नही दाता, तीनो लोक मँझारे ।
ताको पाय क्लेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥३२॥
इस तन मे क्या राचे जियरा, दिन दिन जीण होवे ।
तेज कान्ति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ॥३३।
पाचो इन्द्रिय शिथिल भइ अब, श्वास शुद्ध नही आवे ।
ता पर भी ममता नही छोडे, ममता उर नही लावे ॥३४॥

यो क्लेश हिये धार मरण कर, चारो गति भरमायो ।
सम्यग दर्शन ज्ञान चरण ये, हृदय मे नही लायो ॥१२॥
अब या अरज करू प्रभु सुनिये, मरण समय ये मागू ।
रोग जनित पीडा नही होव, अरु कषाय मत जागो ॥१३॥
ये मुझ मरण समय दु ख दाता, इन हर साता कीजै ।
जो समाधियुक्त मरण होय मुझ, अरु मिथ्या मद छीजै ॥१४॥
यह तन सात कुधातु मई है, देखत ही घिन आवे ।
चर्म लपेटी ऊपर सोहे, भीतर विष्टा पावे ॥१५॥
अति दुर्गन्ध अपावन सो यह, मूरख प्रीति बढावे ।
देह विनाशी जीव अविनाशी, नित्य स्वरूप कहावे ॥१६॥
यह तन जीर्ण कुटी सम आतम, याते प्रीति न कीजे ।
नूतन महल मिले जब भाई, तब यामे क्यो छीजे ॥१७॥
मृत्यु होने से हानि कौन है याको भय मत लावो ।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो ॥१८॥
मृत्यु मित्र उपकारी तेरा, इस अवसर के माही ।
जीरण तन ले देत नया यह, या सम काहू नाही ॥१९॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजे ।
क्लेश भाव का त्याग सयाने, समता भाव धरीजै ॥२०॥
जो तुम पूरव पुण्य किये हैं, तिनका फल सुखदाई ।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावे, स्वर्ग सम्पदा भाई ॥२१॥
राग रोष को त्याग सयाने, सात व्यसन दु खदाई ।
अत समय मे समता धारो पर भव पथ सहाई ॥२२॥
कर्म महादुष्ट वैरी मेरा, या सेती दु ख पावे ।

तन पिंजर में बंध कियो, या सो कौन छुडावे ॥२३॥
भूख तृष्णा आदि दुःख अनेक, इस ही तन में गाढे ।
मृत्युराज अब दया कर, तन पींजर से काढे ॥२४॥
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये ।
गंध सुगंधित लगाये, षटरस अशन कराये ॥२५॥
एता दिनो मैं दास होयकर, सेव करी तन केरी ।
सा तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ॥२६॥
मृत्युराय को शरण पायकर, तन नूतन ऐसो पाऊ ।
जामैं सम्यक् रतन तीन लही, आठो कर्म खपाऊ ॥२७॥
देखो तन सम और कृतघ्नी नही सुण्या जग माही ।
मृत्यु समय मे ये ही परिजन, सब ही है दुःखदाई ॥२८॥
यह सब मोह वढावन हारे, जिय को दुगति दाता ।
इनसे ममत निवारो जियरो, जो चाहो सुख शाता ॥२९॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, मागो इच्छा जेती ।
समताधर कर मृत्यु करो तो, पावा सपत्ति तेती ॥३०॥
यो आराधन सहित प्राण तज, तो या पदवी पाव ।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वग मुक्ति मे जावे ॥३१॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नही दाता, तीनो लोक मँझारे ।
ताको पाय क्लेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥३२॥
इस तन मे क्या राचे जियरा, दिन दिन जीण होवे ।
तेज कान्ति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु का है ॥३३॥
पाचो इन्द्रिय शिथिल भइ अब, श्वास शुद्ध नही आवे ।
ता पर भी ममता नही छोडे, ममता उर नही लावे ॥३४॥

आचरण किया हो, उन सब की मैं सवेग भाव से भावित होकर बारबार निन्दा करता हूँ ।

**सर्वोपाधिविशुद्धोऽहं, ममेयमधुना मति ।**
**साक्षात्केवलिनस्तत्त्वं, भगवन्तो विजानते ॥१०॥**

—सभी प्रकार का परिग्रह त्याग कर मैं विशुद्ध बन गया हूँ । इस समय मेरी मनोवृत्ति निष्पाप है । मेरी इस विशुद्ध परिणति को केवलज्ञानी भगवत साक्षात् जानते हैं ।

**भवप्रपञ्चनविरतो, मोक्षैकगतचेतसा ।**
**समर्पितो मयाऽऽत्मैष, जिनाना जन्मनाशिनाम् ॥११॥**

—एक मात्र मोक्ष की इच्छा से ही मैं ससार के सभी सम्बन्धों से पृथक हुआ हूँ और जन्म मरण रूप महादुःख का नाश करनेवाले ऐसे जिनेश्वर देव के शरण मे मैंने अपनी आत्मा को समर्पित कर दिया है ।

**तत एव महात्मान , सद्भावार्पितचेतस ।**
**स्वशक्त्याऽशेषकर्मांश च्छेद कुर्वन्तु मेऽधुना ॥१२॥**

—अतएव ये परम कृपालु महात्मागण, सद्भाव पूर्वक समर्पित ऐसी मेरी आत्मा के समस्त कर्मों का अपनी शक्ति से अभी नष्ट कर दें ।



# समाधिमरण भाषा पाठ



वंदू श्री अरिहंत परम गुरु, जो सब का सुखदाई ।
इस जग मे दुःख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई ॥वंदू॥१॥
अब मैं अरज करू प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माही ।
अन्त समय मे यह वर मागू, सो दीजे जगराई ॥वंदू॥२॥
भव भव मे तन धार नये मैं, भव भव शुभ सग पायो ।
भव भव मे नृप ऋद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो ॥३॥
भव भव मे तन पुरुष तणो, मैं नारी हू तन लीनो ।
भव भव मे मैं भयो नपुसक, आतम गुण नही चीनो ॥४॥
भव भव मे मैं सुरपद पाई ताके सुख अति भोगे ।
भव भव मे मैं गति नरक धर, दुःख पायो विधि योगे ॥५॥
भव भव मे मैं तियञ्च योनि धर, पायो दुःख अति भारी ।
भव भव मे मैं साधर्मी जन को सग मिल्यो हितकारी ॥६॥
भव भव मे जिन पूजन कीनी, दान सुपात्र ही दीनो ।
भव भव में मैं समवशरण मे, देख्यो जिन गुण भीनो ॥७॥
ऐती वस्तु मिली भव भव मे, सम्यक् गुण नही पायो ।
न समाधियुक्त मरण कियो मैं, ताते जग भरमायो ॥८॥
काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरण ही कीनो ।
एकवार हू सम्यक्त्व युक्त मैं निज आतम नही चीनो ॥९॥
जो निज परको ज्ञान होय तो, मरण समय दुःख काई ।
देह विनाशी मैं अविनाशी, ज्योति स्वरूप सदा ही । १०॥
विषय कषायन के वश होकर, देह आपनो जान्यो ।
कर मिथ्या श्रद्धान हिये विच, आतम नही पिछान्यो ॥११॥

यो क्लेश हिये धार मरण कर, चारो गति भरमायो ।
सम्यग् दर्शन ज्ञान चरण ये, हृदय मे नही लायो ॥१२॥
अब या अरज करू प्रभु सुनिये, मरण समय ये मागू ।
रोग जनित पीडा नही होय, अरु कषाय मत जागो ॥१३॥
ये मुझ मरण समय दु ख दाता, इन हर साता कीजे ।
जो समाधियुक्त मरण होय मुझ, अरु मिथ्या मद छीज ॥१४॥
यह तन सात कुधातु मइ है, देखत ही घिन आवे ।
चम लपेटी ऊपर सोहे, भीतर विष्टा पावे ॥१५॥
अति दुर्गंध अपावन सो यह, मूरख प्रीति बढावे ।
देह विनाशी जीय अविनाशी, नित्य स्वरूप कहावे ॥१६॥
यह तन जीर्ण कुटी सम आतम, याते प्रीति न कीजे ।
नूतन महल मिले जब भाई, तब यामे क्यो छीजे ॥१७॥
मृत्यु होने से हानि कौन है याको भय मत लावो ।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो ॥१८॥
मृत्यु मित्र उपकारी तेरा, इस अवसर के माही ।
जीरण तन ले देत नया यह, या सम काहू नाही ॥१९॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजे ।
क्लेश भाव का त्याग सयाने, समता भाव धरीजे ॥२०॥
जो तुम पूरव पुण्य किय है, तिनका फल सुखदाई ।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावे, स्वर्ग सम्पदा भाई ॥२१॥
राग रोष का त्याग सयाने, सात व्यसन दु खदाई ।
अत समय म समता धारो, पर भव पथ सहाई ॥२२॥
कर्म महादुष्ट बैरी मेरो, या सेती दु ख पावे ।

तन पिंजर में बध कियो, या सो कौन छुडावे ॥२३॥
भूख तृष्णा आदि दुःख अनेक, इस ही तन मे गाढै ।
मृत्युराज अब दया कर, तन पीजर से काढै ॥२४॥
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये ।
गध सुगधित लगाये, पटरस अशन कराये ॥२५॥
एता दिनो मैं दास होयकर, सेव करी तन केरी ।
सा तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ॥२६॥
मृत्युराय को शरण पायकर, तन नूतन ऐसो पाऊ ।
जामै सम्यक् रतन तीन लही, आठो कर्म खपाऊ ॥२७॥
देखो तन सम और कृतघ्नी नही सुण्या जग माही ।
मृत्यु समय मे ये ही परिजन, सब ही है दुःखदाई ॥२८॥
यह सब मोह बढावन हारे, जिय को दुर्गति दाता ।
इनसे ममत निवारो जियरो, जो चाहा सुख शाता ॥२९॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाप सयाने, मागो इच्छा जती ।
समताधर कर मृत्यु करो तो, पावा सपत्ति तेती ॥३०॥
यो आराधन सहित प्राण तज, तो या पदवी पावं ।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वग मुक्ति मे जावे ॥३१॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नही दाना, तीनो लोक मँझारे ।
ताको पाय क्लेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥३२॥
इस तन मे क्या राचे जियरा, दिन दिन जीण होवे ।
तेज कान्ति वल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ॥३३॥
पाचो इन्द्रिय शिथिल भइ अब, श्वास शुद्ध नही आवे ।
ता पर भी ममता नही छोडे, समता उर नही लावे ॥३४॥

मृत्युराज उपकारी जियका, तनसो तो ही छुडावे ।
नातर या तन बदीग्रह मे, पच्यो पच्यो बिलवावे ॥३५॥
पुदगल के परमाणु मिल ले, पिंड रूप तन भासी ।
याही मूरत मे अमूरति, ज्ञान ज्योति गुण खासी ॥३६॥
रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारे ।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, है सो भाव हमारे ॥३७॥
या तन सो इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है ।
खान पान दे या को पोस्यो अब समभाव ठयो है ॥३८॥
मिथ्या दर्शन आतम ज्ञान बिन, यह तन अपनो जान्यो ।
इन्द्री भोग गिने सुख मैंने, आपो नही पिछान्यो ॥३९॥
तन विनशते नाश जाणी निज, यह आया न दु खदाई ।
कुटुम्ब आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादि छाई ॥४०॥
अब निज भेद यथारथ समझ्यो, मैं हूँ ज्योति स्वरूपी ।
ऊपजे विनसै मो यह पुद्गल, जान्या लोको रूपी ॥४१॥
इष्ट अनिष्ट जे त सुख दु ख है सो सब पुदगल लागे ।
मैं जब अपनो रूप विचारा, तब वे सब दु ख भागे ॥४२॥
बिन समता तन अनन्त धरे मैं, तिन मे यह दु ख पायो ।
शस्त्रघात त अनन्त वार मर, नाना योनि भरमायो ॥४३॥
बार अनन्त ही अग्नि माही जल, मुवो सुमति न लायो ।
सिंह व्याघ्र अही अनन्तवार मुझ, नाना दु ख दिखाये ॥४४॥
बिन समाधि यह दु ख लहे मैं, अब उर समता आई ।
मृत्युराज का भय नहीं माना, देवे तन सुखदाई ॥४५॥
या त जब लग मृत्यु न आवे, तब लग जप तप कीजे ।

जप तप विन इस जग के माही, कोई भी ना समझै ॥४६॥
स्वर्ग सम्पदा तप सो पावे तपसो कम नसावै ।
तप ही सो शिव कर्म निपति है, या सो तप चित लावै ॥४७॥
अब जानी मैं समता विन मुझ, कोऊ नाही सहाई ।
मात-पिता सुत-बधव त्रिया, ये सव है दु खदाई ॥४८॥
मृत्यु समय मे मोह करे ये, ताते आरत हाई ।
आरत ते गति नीचों पावे, यो लख मोह तज्यो है ॥४९॥
और परिग्रह जेते जग मे, तिन सो प्रीति न कीजै ।
परभव मे यह सग न चाले, नाहक आरत कीजै ॥५०॥
जे जे वस्तु लखत है ते पर, तिनसु नेह निवारा ।
पर-गति मे ये साथ न चाले, ऐसा भाव विचारो ॥५१॥
जो परभव मे सग चलै तुझ, तिनम प्रीत सु कीजै ।
पच पाप तज समता धारा, दान चार विध कीजै ॥५२॥
दस लक्षणमय धम धरा उर, अनुकम्पा उर लावा ।
पोडस कारण नित्य चिंतवा, द्वादस भावना भावा ॥५३॥
पक्खी आदि को पोपध कीजै, अशन रात का त्यागो ।
समता धर दुर्भाव निवारो, सयम मु अनुरागो ॥५४॥
अत समय मे यह शुभ भावना, हावे आनि सहाई ।
स्वग मोक्ष फल ताही दिलावे, ऋद्धि देही अधिकाई ॥५५॥
खोट भाव सकल जिय त्यागा, उर मे समता लाके ।
जा सेती गति चार दूरकर, वसा मोक्ष पुर जाके ॥५६॥
मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ आराधन भाई ।
ये ही तो को सुख की दाता, और हितु कोऊ नाही ॥५७॥

आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गही थिरता भारी ।
बहु उपसग सहे शुभ भावना, आराधन उर धारी ॥५८॥
तिनमे कछु एक नाम कहू मैं, सुना जिया चित्त लाके ।
भाव सहित अनुमादे तासे दुर्गति होय न जाके ॥५९॥
अरु समता निज उर मे आवे, भाव अधीरज जावें ।
वो निशदिन जा उन मुनिवर के, ध्यान हिये बिच लावें ॥६०॥
धन्य धन्य सुकमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी ।
एक शियालनी युग बचवा युत, पाव भरयो दुखकारी ॥६१॥

## ढाल—मेरी भावना की तर्ज में

यह उपसग सह्या धर थिरता, आराधन चितधारी ।
ता तुमरे जीव कौन दुख है, मृत्यु महोत्सव वारी ॥टेर॥६२॥
धन्य धन्य जु कोशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो ।
ता भी श्री मुनि नेक नही डिग्यो, आतम सो हित लायो ।यह ।६३।
देखो गज मुनि के सिर ऊपर, विप्र अग्नि बहु बारी ।
शीप जलै जिम लकडी तनको, तो भी नाही चिगारी ॥६४॥
सनतकुमार मनि के तन मे, कुष्ट वेदना व्यापी ।
छिन्न भिन्न तन तासा हुवा, तब चिन्त्यो गुण आपी ॥६५॥
श्रणिक सुत गगा मे डूब्यो तब जिन नाम चितार्यो ।
धर सलेखना परिग्रह छाड्या, शुद्ध भाव उर धार्यो हो ॥६६॥
समन्तभद्र मुनिवर के तन म, क्षुधा वेदना आई ।
ता दुख म मुनि नेक न डिगियो, चिन्त्या निज गुण भाई ॥६७॥
ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौसम्बी तट जानो ।
नदी में मुनि बहकर मूने, सा दुख उन नही मानो ॥६८॥

धर्मघोष मुनि चम्पा नगरी, वाह्या ध्यान धर ठाढो ।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दु ख सह्यो गाढो ॥६६॥
श्रीदत्त मुनि पूर्व जन्म को वैरी देव सु आके ।
वैक्रिय कर दु ख शीत तणो सो, सह्यो साध मन लाके ॥७०॥
वृषभसेन मुनि उष्ण शिला पर, धर्यो ध्यान मन लाई ।
सूर्य घाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सही अधिकाई ॥७१॥
अभयघोष मुनि काकदीपुर, महा वेदना पाई ।
वैरी चड ने सव तन छेद्या, दु ख दीनो अधिकाई ॥७२॥
विद्युतवर ने वहु दु खलायो, तो भी धीर न त्यागी ।
शुभ भावन से प्राण तज निज, धन्य और वडभागी ॥७३॥
पुत्र चिलाती नामा मुनि को, वैरी ने तन घातो ।
मोटे मोटे कीट पडे तन, तापर निज गुण रातो ॥७४॥
दण्डक नामा मुनि की देही, वाणन कर अति भेदी ।
ता पर नेक डिगे नही वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी ॥७५॥
अभिनन्दन मुनि आदि पाच सौ, घाणी पेली जु मारे ।
तो भी श्रीमुनि समता धारी, पूर्व कर्म विचारे ॥७६॥
चाणक मुनि गौ घर के माही, मूढ अग्नि परजाल्यो ।
श्री गुरु उर समभाव धार के, अपनो रूप सभाल्यो ॥७७॥
सात शतक मुनिवर ने पायो हथिनापुर मे जानो ।
वली ब्राह्मण कृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नही मानो ॥७८॥
लोहमयी आभूषण गढ के, ताते कर पहिराये ।
पाचो पाडव मुनि के तन मे, तो भी नही चिगाये ॥७९॥
और अनेक भले इस जग मे, समता रस के स्वादी ।

ये ही हमको हो सुखदाता, हरहै देव प्रमादी ॥८०॥

तर्ज प्रथमवत्

सम्यग् दर्शन ज्ञान चरण तप, ये आराधन चारो ।
ये ही हमको सुख के दाता, इन्हे सदा उरधारो ॥८१॥
यो समाधि उर माही लावो, अपनो हित जो चाहो ।
तज ममता अरु आठो मद को, ज्योति स्वरूपी ध्यावो ॥८२॥
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामातर के काजे ।
सो भी शकुन विचारे कानी, शुभ के कारण साजे ॥८३॥
मातादिक अरु सब कुटुम्ब सौ, निश को शकुन बनावे ।
हलदी, धनिया, पुगी अक्षत, दूध दही फल लावै ॥८४॥
एक ग्राम के कारण एते, करे शुभाशुम सारे ।
जब पर-गति को करत पयानो, तब नही सोचे प्यारे ॥८५॥
सब कुटुम्ब जब रोवन लागै तो ही रूलावे सारे ।
यह अपशकुन करै सुन ताको, तू यो क्यो न विचारे ॥८६॥
अब परगति की चालत विरिया, धर्म ध्यान उर आनो ।
चारो आराधन आराधा, मोह तणो दु ख हानो ॥८७॥
है नि मत्य तजा सब दुविधा, आतम राम सु ध्यावो ।
जब पर-गति का कर हु पयानो, परम तत्त्व उर लावो ॥८८॥
मोह जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो ।
मत्यु मित्र उपकारी तेरा, यह उर निश्चय धारो ॥८९॥
दोहा—मृत्यु महात्सव पाठका, पढो सुनो बुद्धिवान ।
सरधार छै नित सुख्र सहो, सूरचद शिव थान ॥१॥
पच उभय नव एक नभ, सब तै सो सुखदाय ।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय ॥२॥इति॥

# श्री वर्धमान स्तुति

रचयिता–श्री भीखमचदजी टाटिया, राजनादगाव (म प्र)



शरण तुम्हारे, त्रिशला दुलारे,तारो जिनद प्रभु तारणहारे ।टेर।
पैसठ हजार पांच सौ छत्तीस, जन्म मरण हम कीना हो–जन्म ॥
कोडी के अनत भाग मे, विके निगोद भव लीना हो–विके ॥
गाजर कद मूल आलू, जनम लिये रतालू–तारो ॥ १ ॥
बारह हजार आठ सौ चोवीस, पृथ्वी पाणी वायु हो–पृथ्वी ॥
बेइन्द्री भव अस्सी कीना, वायु जिम ही तेऊ हो–वायु ॥
तेइन्द्री मैं साठ लीने, चउइन्द्रिय चालीस कीने–तारो ॥ २ ॥
असन्नी पचेन्द्रिय माही, वीस-चार भव कीना हो–वीस ॥
सन्नी भव तो एकज जानो, चार गति प्रमाणा हो–चार ॥
सब ही का हिसाब जानो, एक मुहूर्त प्रमाणो–तारो ॥ ३ ॥
अनत पुण्य का उदय हुवा तब, नर भव उत्तम पाया हो–नर ॥
आर्य क्षेत्र और जैन धर्म का, योग यथावत् पाया हो–योग ॥
सुने मुनि देशना, शुद्ध हो स्पशना–तारो ॥ ४ ॥
सुबह शाम हम करे वदना, निमल चित्त सुधारी हो–निमल ॥
इकवीस गुण के धारक हो हम, श्रावक व्रत आचारी हो–श्रावक ॥
(सत्ताईस गुण धारक हो हम, शुद्ध महाव्रत धारी हो–शुद्ध ॥)
"चरण रज" भाषे यू, भगत भटकावे क्यू–तारो ॥५॥



# हितोपदेश

(रचयिता—बहुश्रुत श्रमणश्रेष्ठ प र पू श्री समर्थमलजी म सा)

आतम दमवोरे प्राणिया, आतम दमिया सुख थाय ।
परने दमिया दु खडो हुवे, या छे वीरनी वाय ॥१॥
स्ववश जो आत्म दमे नही, विवश निश्चय दमाय ।
देखो जगना रे जीवडा, किण किण विध दु ख पाय ॥२॥
सुखनी आशा करीकरी, हरतो परना तू प्राण ।
सुख निश्चय इम ना मिले, भाखे त्रिजग भाण ॥३॥
जीमे भोजन जहेरना, धरी मूढ जीवणरी आश ।
तीम ही मोह हिंसा थकी, वाछे सुखनी रे राश ॥४॥
कर्ता हर्ता सुख दु ख तणो, आतम मित्र अमित्र ।
भला मूडा आचार मे, वर्त्या हुवे रे मित्र ॥५॥
दु ख वैतरणी नदी तणा, वली कूड-सामली ना जोय ।
आपे निश्चे दुर आतमा, जो पापे प्रवृत्ति होय ॥६॥
नन्दन वन सम सुख सही, वली कामधेनु सम जोय ।
तह आपे सु आतमा, रुडा रीते जा होय ॥७॥
दुदम दमयी नीज आतमा, अति उत्तम वलि जोय ।
सयम तप से ते वश किया, बेहु लोके सुख होय ॥८॥
आप्त वाणी उर आणने, धारे मुनि धम जेह ।
तह निश्चे शिव गति लहे, [illegible] वद्य प्रभु एह ॥९॥इति॥

(विदुषी श्रीकुसुमवती बहिन से प्राप्त)

# गुरु गुण गान

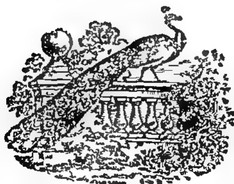
आए समर्थ मुनि आए हो भव्यों के हृदय विकसाए।
जो भी समय गुण गाए, हो समकित निर्मल हो जाए ।ध्रुव।
आगम ज्ञाता बहुश्रुत पण्डित, सभी आपको कहते।
सूत्र न्याय से सबके मन का, समाधान नित करते ॥
हाँ कोई न खाली जाए। हो० ।१।
तर्क शक्ति अद्भुत है ऐसी, वादी कोई न टिकते।
उदाहरण चुन ऐसे दें कि, फिर प्रति प्रश्न न उठते ॥
हाँ कटुता कभी न लाए। हो० ।२।
क्रिया आपकी इतनी ऊँची, 'क्रिया-पात्र' कहलाये।
दर्शन पा चौथे आरे की, स्मृति सभी को आए ॥
हा बाल वृद्ध हुलसाए। हो० ।३।
नाम आपका सुन्दर वसे, गुण भी आप में मिलते।
सेवा विनय क्षमा आदि में, स्थान अनुपम रखते ॥
हा मद न किंचित लाए। हो० ।४।
ज्ञान क्रिया दोनों का आप में, योग मिला है भारी।
दौड़ दौड़ सेवा में आते, श्रद्धालु नर-नारी ॥
हाँ शीष स्वतः झुकजाए। हो० ।५।
जिन शासन के सत्य रूप की, झांकी आप में मिलती।
आप सरिखों से ही ऐसी, रीति नीति सब निभती ॥
हाँ धर्म दीपन पाए। हो० ।६।
दीप्ति अखण्डित ब्रह्मचर्य की, ढकी अग्नि ज्यों दमके।
ज्ञानचन्द्र मुनि सम्प्रदाय में, सूरज बनकर चमके ॥
हाँ कीर्ति बहुत ही पाए। हो० ।७।
पा कर आपको लगता जैसे, मैंने सब कुछ पाया।
"पारस" ने चरणों में आपके, तन मन सभी चढ़ाया ॥
हा दया आपकी चाहे। हो० ।८।

# संकट मोचन वीराष्टक



धम सरूप विलीन भयो जग, मे अरु पाप सरूप पसारो।
राज्य अखडित पापन को जब, धर्म ही दीन सुदेश निकारो ॥
जीवन जीवनि को जब सकट, पूण तबै तुमने पग धारो।
को नही जानत है प्रभु वीर, कि सकट मोचन नाम तुम्हारो ।१।
पाप विनाशन दर्शन को जब, सेठ सुदशन आय तुम्हारो।
मारग अर्जुन माली मिलो निज, देह विषे खल यक्ष ही धारो ॥
मारन तत्पर माली भयो तब, ध्यान सुदर्शन ने तब धारो ।।को ।२।
दुर्जन अर्जुन पाप किये नर, नारि हने वन के हतियारो।
मारक को भी दियो तुमने शिव, तारक है प्रभु नाम तिहारो।
जन्म जरादिक चोर सतावत, है यह सकट दूर निवारो ॥ को ।३।
भीषण कौशिक वास करे अरु, नास करे वन जीव ही भारो।
ध्यान धरा उसके बिल ऊपर, डक दियो तुमको अति खारो ॥
आप दिया उपदेश सुधा सब,कौशिक को दु ख सकट टारो ।।को ।४।
गौतम गर्व निमग्न हुवे प्रभु, जीतने आयहु पास तुम्हारो।
देखत शान मनोहर सूरत, गर्व गयो सब भाग बिचारो ॥
आपहि मौन निशाक उन्हे जिन शासन भार लियो प्रभु सारो ।५।
पीर हरो मुझ वीर ! करो, भवसागर तीर तरड हमारो।
हे जगनाथ ! जगतारनि ! पावन ! मार की भीषण मार निवारो ॥
जा विध आप किया वश में प्रभु ! सो हम उपर तेज पसारो ।६।
सूय बने निज मडल मे पर, फैल रहो जग मे उजियारो।
आपहि तार दिये बहु लेकिन, नामहि तार दिये नही पारो ॥
क्या खगराज के मत्रन से नही, शीघ्र विलात भुजग बिचारो ।७।

तो फिर क्योकर होय रही अब, देर जबै मुझ आयहु वारो ।
पारस कचन लोह करे पर, आपहि तो अपने सम धारो ।।
वधमान श्री वीरप्रभु ! तुम, शरणागत को क्यो नही तारो ।
को नही जानत है प्रभुवीर ! कि सकट मोचन नाम तिहारो ।८।



## 卐 संघ के प्रकाशन 卐

| | मूल्य | पोस्टेज |
|---|---|---|
| १ मोक्षमार्ग ग्रंथ | ५–०० | १–७१ |
| २ भगवती सूत्र भाग १ | ५–०० | १–८३ |
| ३ भगवती सूत्र भाग २ | ५–०० | १–८३ |
| ४ उत्तराध्ययन सूत्र | २–०० | ०–४६ |
| ५ उववाइय सुत्त | २–०० | ०–४६ |
| ६ जैन स्वाध्यायमाला | २–०० | ०–४६ |
| ७ दशवैकालिक सूत्र | १–२५ | ०–३७ |
| ८ अंतगडदसा सूत्र | १–०० | ०–२५ |
| ९ स्त्री प्रधान धर्म | ०–२५ | ०–०८ |
| १० सुख विपाक सूत्र | ०–२० | ०–०८ |
| ११ प्रतिक्रमण सूत्र | ०–१६ | ०–०८ |
| १२ सामायिक सूत्र | ०–०७ | ०–०५ |
| १३ सूयगडांग सूत्र | अप्राप्य | |
| १४ सिद्धस्तुति | अप्राप्य | |
| १५ जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १ | १–०० | ०–२५ |
| १६ नन्दी सूत्र | २–५० | |
| १७ वृहदालोयणा | ०–१० | ०–०५ |
| १८ संसार-तरणिका | ०–५० | |
| १९ आत्मसाधना संग्रह | १–२५ | ०–४० |

### छप रहा है

सम्यक्त्व विमर्श छप रही है।

मुद्रक–श्री जैन प्रिंटिंग प्रेस सैलाना (म. प्र.)


श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ
सैलाना (म.प्र.)